"सफल-जीवन-माला"—२

स्वामी रामतीर्थ

—केदारनाथ भट्ट

"जीवन सफल 'सूर' ताही को काज पराये आवत"

स्वामी रामतीर्थ

का

जीवन-चरित्र

संपादक—

केदारनाथ भट्ट

प्रकाशक—
लक्ष्मीनारायण अग्रवाल
आगरा

प्रथमबार] [मूल्य ।)

प्रकाशक—
लक्ष्मीनारायन अग्रवाल
बुकसेलर, आगरा

मुद्रक—
राधारमन अग्रवाल
मौडर्न प्रेस, नमकमण्डी
आगरा

निवेदन

हिन्दी में अभी तक जीवन-चरित्रों की कमी चली ही आती है। इधर देश में बढ़ती हुई जागृति के कारण सभी लोग अपने यहाँ के महान् पुरुषों के बारे नाम-मात्र से अधिक हाल जानना चाहते हैं। इसी इच्छा को पूरी करने के लिये यह 'सफल-जीवन' ग्रन्थ-माला निकाली जा रही है। इसमें चरित-नायकों के जीवन की मुख्य-मुख्य घटनाओं के साथ उन सब बातों का समावेश भी कर दिया गया है, जिनसे पाठकों को बहुत से उपदेश मिल सकेंगे।

भाषा और छपाई का ढङ्ग ऐसा रखा गया है कि जिससे केवल साधारण अक्षर-ज्ञान रखनेवाले पाठक भी आसानी से पढ़ और समझ सकें।

सम्पादक।

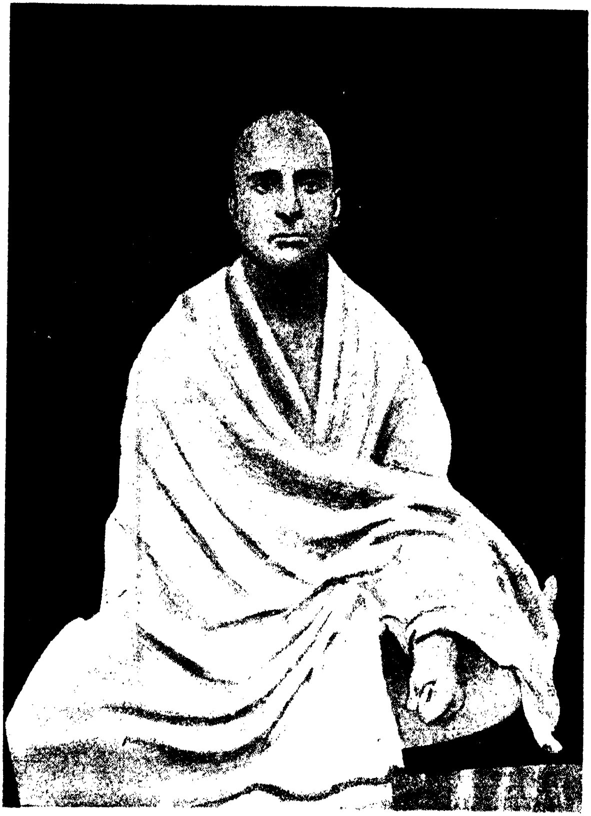

स्वामी रामतीर्थ जी

जन्म और बचपन

वेदान्तशास्त्र के प्रसिद्ध उपदेशक स्वामी श्रीरामतीर्थ जी महाराज का जन्म सन् १८६३ ई० में अक्टूबर मास की ८ तारीख़ को हुआ था। इनके पिता का नाम गोस्वामी हीरानन्दजी था। ये पंजाब प्रान्त में में गुजरान वाला ज़िले के अन्तर्गत मराली नामक नामक गाँव के रहने वाले थे। सुनते हैं यह वही गुसाँई वंश है जिसमें गुसाँई श्री तुलसीदासजी जैसे महात्मा जन्म ले चुके हैं। हिन्दू और हिन्दी भाषा से प्रेम रखनेवाले सभी लोग तुलसीदासजी के नाम से भली भाँति परिचित हैं। इनकी बनाई हुई रामायण का आजकल भी घर-घर में पठन तथा कीर्तन होता है। वास्तव में रामायण हिन्दी साहित्य का एक समुज्ज्वल रत्न है। हमारे चरित नायक के जन्म का नाम तीर्थराम था। पञ्जाब प्रान्त में, अब भी हिन्दुओं के

नामों में अधिकता से राम शब्द का प्रयोग पाया जाता है जैसे तीर्थराम, गंगाराम, मेलाराम, मुन्शीराम, लेखराम इत्यादि । इसी प्रथा की झलक इस पवित्र नाम में भी थी । इसमें सन्देह नहीं कि मनुष्य का चरित्र बनाने में तथा उसके कर्तव्य का बोध कराने में जन्मभूमि भी एक विशेष कारण है । जिस प्रकार माता-पिता की शिक्षा और विचारों का असर सन्तान पर पड़ता है, उसी प्रकार जन्म भूमि की दशा का प्रभाव भी मनुष्य पर पड़ता है । स्वदेश की आवश्यकताएँ ही मनुष्य को कर्म-वीर बनाती हैं । जिस देश में जिस बात की कमी होती है, वहाँ पर पैदा होनेवाला बुद्धिमान् मनुष्य प्रायः उस कमी को मिटाने की चेष्टा किया करता है । यदि स्वर्गीय लोकमान्य तिलक और श्री महात्मा गाँधी का जन्म भारतवर्ष में देश की पराधीनता की दशा में न होता तो शायद उनको लोकमान्य तथा महात्मा बनने का अवसर भी न मिलता। यदि स्वामी दयानन्दजी का जन्म ऐसे समय पर न होता जब कि भारतवर्ष में ईसाई और इस्लाम धर्म के प्रचारकों ने धूम मचा रक्खी थी तथा दिन-दिन हिन्दू समाज क्षीण होता जा रहा था, तो वे आर्य्यसमाज की स्थापना न करते तथा लाहौर के दयानन्द ऐङ्गलो-वैदिक कालेज और गुरुकुल काँगड़ी जैसे महाविद्यालयों का

आज नाम न सुनाई देता। हमारे चरित्र-नायक ने भी भारतभूमि को ऐसे समय पर पवित्र किया था जब कि देश में वेदान्तशास्त्र का प्रचार बहुत कम होता जा रहा था। लोगों का मन संसार की विषय-वासनाओं में विशेषता से लगता जा रहा था। परलोक और ईश्वर में विश्वास की मात्रा घट रही थी। आधिभौतिक पदार्थों को विशेष महत्त्व मिलने लगा था। आध्यात्मिक जीवन का महत्त्व समझनेवालों की बहुत कमी हो गई थी और भगवान् श्री कृष्ण के इस अमृतमय उपदेश को लोग भूल बैठे थे कि—

> "अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत।
> अव्यक्त निधनान्येव तत्र का परिदेवता॥"
>
> —गीता, अध्याय २, श्लोक २८।

अर्थात्, हे अर्जुन! आदि में सभी जीव अप्रकट रूप में रहते हैं, इसी प्रकार अन्त में भी अप्रकट रूप को प्राप्त हो जाते हैं, केवल बीच में थोड़े से समय के लिए प्रकट रूप में आते हैं, तब फिर इसमें सोच क्या है। मतलब यह है कि इस अविनाशी जीव की स्थिति संसार में बहुत थोड़े समय के लिए होती है, तो इतने थोड़े समय के लिए ही जिस संसार से मतलब है उससे अधिक मोह करना व्यर्थ है किन्तु उस परम-पिता प्रभु

के चरणों का ध्यान भी करना चाहिए जिससे सदा मतलब है। अस्तु, उस समय किसी को मालूम न था कि बालक तीर्थराम एक दिन स्वामी रामतीर्थ बन कर भारतवर्ष में ही नहीं किन्तु अमरीका जापान आदि विदेशों में भी वेदान्त के ज्ञान का प्रकाश करेंगे।

तीर्थराम बचपन में ही मातृहीन हो गए थे। इनको अपनी माता का दूध भी बाल्यावस्था में न मिला था। इनका पालन-पोषण इनकी एक बुआ (पिता की बहिन) और इनके बड़े भाई गुसाँई गुरुदास ने ही किया था। बचपन में अन्य लोग चाहे कितने भी प्यार से रक्खें, माता की समानता नहीं कर सकते। माता चाहे झिड़कती भी रहे परन्तु बालक का मोह उस समय सब से अधिक उसीमें होता है। माता की गोद में बैठ कर बालक को जो प्रसन्नता प्राप्त होती है और स्त्रियों के दूध पिलाने से भी उतना हर्ष उसे नहीं होता। बाल्यावस्था में माता का वियोग बच्चे के लिए महा दुःख है। यह दुःख बेचारे तीर्थराम को भी सहना पड़ा। इसी कारण यह छोटी अवस्था में बहुत दुर्बल और शक्तिहीन रहा करते थे। इनकी बचपन की दशा देखनेवाला मनुष्य यह बात कभी भी नहीं सोच सकता था कि ये एक दिन ऐसे बली सन्यासी होंगे कि पचास मील तक पहाड़ों पर दौड़

लगाने पर भी न थकेंगे और अमेरिका के जङ्गलों की दौड़ में सिपाहियों से भी आगे निकल जावेंगे।

(२) शिक्षा और सत्संग

बालक तीर्थराम का शरीर कमज़ोर होने पर भी ये पढ़ने-लिखने में बड़े होशियार थे। पढ़ने के समय इनका चित्त पुस्तक में ही रहता था और सब बातों को भूल जाते थे। आजकल के बहुत से बच्चे घरवालों के डर से पुस्तक हाथ में लिए बैठे रहते हैं पर मन उनका पतङ्ग या और बातों में रहता है। बालक तीर्थराम ऐसे नहीं थे। ये पढ़ने में खूब ध्यान लगाते थे। इनकी प्रारंभिक शिक्षा इनके गाँव मरालोवाला के ही प्राइमरी स्कूल में हुई थी। प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त करने पर ये गुजरानवाला आ गये थे। गुजरानवाला से ही इन्होंने पञ्जाब विश्वविद्यालय की एन्ट्रेंस परीक्षा पास की। एन्ट्रेंस परीक्षा पास करने के समय इनकी अवस्था १५ वर्ष की थी। अध्यापक लोग इनकी विलक्षण बुद्धि और अद्भुत धारणा-शक्ति के कारण इनसे बड़े प्रसन्न रहते थे। ये जैसे प्रतिभाशाली थे वैसे ही परिश्रमी भी थे। जिस कार्य्य को हाथ में ले लेते थे उसको पूरा करे बिना नहीं हटते थे। इनका स्वभाव आज का काम कल पर छोड़ने का नहीं था। गणित शास्त्र में इन्हें बचपन से ही बड़ा

अनुराग था। इस विद्या में सफलता प्राप्त करने के लिये परिश्रम और बुद्धि दोनों चीज़ों की आवश्यकता है। यदि विद्यार्थी केवल परिश्रमी ही हो और बुद्धि का लवलेश न न रखता हो, तो गणित विद्या में सफल नहीं हो सकता। ऐसे ही जो विद्यार्थी केवल अपनी बुद्धि के भरोसे से ही कूदते रहते हैं तथा परिश्रम से जी चुराते हैं, वे भी इस शास्त्र में विफल रहते हैं। इसलिये इस विद्या के विद्यार्थी को बुद्धि और परिश्रम दोनों चीज़ों के सहारे की अपेक्षा है। विद्यार्थी तीर्थराम में ये दोनों ही गुण विद्यमान थे। इनसे जो कुछ प्रश्न किया जाता था, उसका उत्तर खूब सोच समझ कर देते थे। इनके अध्यापक लोग छोटी अवस्था में ही इनके इस ढङ्ग को देख कर बड़ा ही अचरज किया करते थे और कहा करते थे कि ये जिस विषय को हाथ में ले लेंगे उस में बड़ी उन्नति करेंगे। जो कुछ काम इनके सुपुर्द किया जाता था उसको निर्दिष्ट समय से पहले ही तैय्यार कर लेते थे। आज कल के बहुत से आलसी विद्यार्थी आज के करने लायक काम को कल पर छोड़ देते हैं और समय पर अध्यापक की झिड़कियाँ खाते हैं और दण्ड पाते हैं। परन्तु तीर्थराम ने ऐसा समय कभी नहीं आने दिया। ये काम से उकताते नहीं थे। यदि किसी प्रश्न के उत्तर में इन्हें देर लग जाती या

विफलता हो जाती तो उसको छोड़ते नहीं थे, किन्तु उसका विशेष ध्यान से मनन करते थे और अन्त में उसका ठीक उत्तर निकाल कर मानते थे। इसी परिश्रम-शीलता और बुद्धिमत्ता के कारण ये पञ्जाब यूनिवर्सिटी की एन्ट्रेंस परीक्षा में प्रथम रहे थे।

एन्ट्रेंस परीक्षा में योग्यतापूर्वक पास होने पर तीर्थराम जी के पिताजी की इच्छा थी कि इन्हें किसी रोजगार में लगाया जाय, जिससे घर की आर्थिक दशा सुधरे तथा ये घर का भार सँभालने के योग्य बनें। परन्तु मनुष्य की इच्छा से ईश्वर की इच्छा बहुत प्रबल होती है। मनुष्य चाहता कुछ है और होता कुछ है। इससे यह सिद्ध होता है कि करनेवाला कोई और ही है। किसीने सच कहा है कि 'अहं करोमीति वृथाभिमानः, स्वकर्म्मसूत्र ग्रथितोहि लोकः' अर्थात् 'मैं करता हूँ' यह मनुष्य का व्यर्थ अभिमान है। किसी अलौकिक शक्ति ने इस जगत् को पहले ही अपने अपने कर्म्मों के डोरों से गूँथा हुआ है। तीर्थराम के पिता यह स्वप्न में भी नहीं सोचते थे कि तीर्थराम किसी दिन सन्यासी हो जायगा और सारे कुटुम्ब के लोगों को तथा सम्बन्धियों को विलखता छोड़ जायगा। अस्तु, तीर्थराम जब अपने गाँव की पढ़ाई को समाप्त कर के गुजरानवाला आये, उस समय वहाँ एक महात्मा रहते थे। ये धन्ना भगत

के नाम से प्रसिद्ध थे। वेदान्तशास्त्र के रहस्य को खूब समझते थे। वहाँ के बड़े-बड़े विद्वान् और धार्मिक लोग इन महात्माजी में श्रद्धा और भक्ति रखते थे। विद्यार्थी तीर्थराम भी जब गुजरानवाला पहुँचे, तो महात्माजी के दर्शन करने गए। महात्माजी इन्हें देख कर बड़े प्रसन्न हुए। धीरे-धीरे धन्ना भगत और विद्यार्थी तीर्थराम में इतना स्नेह हो गया कि जब तीर्थराम को अपनी पढ़ाई से अवकाश मिलता था, तभी ये भगतजी के डेरे पर पहुँच जाते थे। भगतजी वेदान्ती थे इसलिये तीर्थराम को भी वेदान्त की ही शिक्षा दी। भगतजी की अमृतमयी शिक्षाओं का प्रभाव तीर्थराम के हृदय पर बहुत अच्छा पड़ा। इस प्रकार पढ़ने के पश्चात् जो समय विद्यार्थी तीर्थराम को मिलता था उसको वे भगत के सत्संग में ही लगाने लगे।

पाठक समझ सकते हैं कि ज्ञान प्राप्त करने में और उसका उपयोग करने में बड़ा भेद है। भारतवर्ष में वेदान्त-शास्त्र के विद्वानों की संख्या आज भी कम नहीं है। जहाँ देखियेगा बड़े-बड़े वेदान्तभूषण, वेदान्ताचार्य, वेदान्ततीर्थ और वेदान्तकेसरी आदि भयङ्कर उपाधियों को धारण करनेवाले पोथाधारी पण्डित आपको मिलेंगे। परन्तु इनमें से वेदान्त का महत्त्व समझनेवाला तथा

उसके सिद्धान्तों पर चलनेवाला कोई विरला ही मिलेगा। आप किसी पण्डित को ५१) रुपए दक्षिणा देने के लिये तैय्यार हों, पण्डितजी फौरन आप के घर पर आकर सारा वेदान्त-दर्शन सुना जायँगे। आसन तक भी आपको देने की ज़रूरत नहीं, अपने घर से ही ले आयँगे। परन्तु इन पण्डितों से वेदान्त का महत्त्व बढ़ता नहीं, किन्तु कम होता है। वेदान्त का असली विद्वान् होने के लिये बहुत से अलौकिक गुणों की आवश्यकता है। केवल बड़े-बड़े ग्रन्थराजों से काम नहीं चलता। जो पण्डित वेदान्तशास्त्र के बड़े-बड़े ग्रन्थों को पढ़ कर उन पर अमल नहीं करते हैं, वे वैसे ही हैं जैसे कि एक पुस्तक बेचनेवाला पुस्तकालयाध्यक्ष। धन्ना भगतजी ने यद्यपि वेदान्त-शास्त्र की संस्कृत पुस्तकों में इतना श्रम नहीं किया था और न उन्होंने कोई ऐसी उपाधि ही प्राप्त की थी, पर वे असली वेदान्ती थे। इसीलिए उनके अनुयायियों की संख्या भी दिन-दिन बढ़ती जा रही थी तथा बड़े-बड़े योग्य मनुष्य उनके उपदेशों के लिए लालायित रहते थे। वास्तव में महापुरुषों के लिये सांसारिक विश्वविद्यालयों की उपाधियों का कुछ महत्त्व नहीं है। वे विशिष्ट मनुष्यों की कोटि में होते हैं। सांसारिक डिग्रियाँ साधारण मनुष्यों की शोभा के लिए ही होती हैं। जितने

देश-नेता और जाति में जागृति फैलानेवाले महात्मा हुए हैं वे डिग्रियों के आधार पर नहीं हुए हैं किन्तु अपनी स्वतन्त्र बुद्धि के सहारे ही संसार के उपकारी बने हैं। आर्य्य-समाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्दजी, किसी विश्वविद्यालय के उपाधिमण्डित स्नातक नहीं थे। रामकृष्ण परमहंसजी के पास कोई ऐसी डिग्री नहीं थी जिन के स्वामी विवेकानन्द जैसे शिष्य हुए तथा आज भी हज़ारों शिक्षित मनुष्य जिनके उपदेशों का आदर करते हैं। भाव यह है कि केवल डिग्री से योग्यता का निर्धारण नहीं हो सकता।

पहले कहा जा चुका है कि विद्यार्थी तीर्थराम के एन्ट्रेन्स पास हो जाने पर इनके पिता की इच्छा इनको रोजगार में लगाने की थी। परन्तु धन्ना भगतजी ने ही इनके पिता से अनुरोध किया था कि वे इन्हें अंग्रेज़ी की उच्च शिक्षा दें। इनके पिता भी भगतजी के बड़े प्रेमी थे। उन्होंने भगतजी के आदेश को स्वीकार कर के इन्हें लाहौर पढ़ने के लिये भेज दिया।

कालेज की छात्रता

गुजरानवाला से एन्ट्रेन्स परीक्षा में उत्तम सफलता प्राप्त कर के छात्रवर तीर्थराम कालेज में अध्ययन करने के लिए पञ्जाब की राजधानी लाहौर नगर में पहुँचे। लाहौर

की परिस्थिति उस समय ऐसी नहीं थी। आजकल लाहौर ने बड़ी उन्नति कर ली है। उस समय वहाँ पर केवल तीन कालेज थे, जिनमें गवर्नमेंट कालेज और फारमैन क्रिश्चियन कालेज उन्नत दशा में थे। तीसरा कालेज दयानन्द एङ्ग्लो-वैदिक कालेज था, जो कि उस समय नया ही था। अब दयानन्द एंगलो-वैदिक कालेज ने भी बड़ी उन्नति कर ली है, विशेष क्या, अब तो भारतवर्ष भर में इस जैसे सिर्फ २-४ कालेज हैं, जिनमें इतनी संख्या में विद्यार्थी उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं और शुल्क भी कम लिया जाता है तथा धनहीन विद्यार्थियों को निःशुल्क भी शिक्षा मिलती है। इस कालेज के अध्यापकों तथा विद्यार्थियों का जीवन बहुत ही सादा होता है। अध्यापकों के स्वार्थ-त्याग का नमूना जैसा यहाँ मिल सकता है वैसा पूना के फर्ग्युसन कालेज आदि एक दो कालेजों को छोड़ कर अन्यत्र मिलना कठिन है। अपने-अपने विषय में विशेष योग्यता रखते हुए भी यहाँ के अध्यापक बहुत कम वेतन लेते हैं। भारतीय विश्वविद्यालयों के प्रोफेसरों का वेतन ८५०) से लेकर १२००) तक होता है, तथा रीडरों का वेतन ४५०) से ८५०) तक होता है और लेक्चरर अर्थात् तीसरी श्रेणी के अध्यापकों का वेतन भी २५०) से ४५०) तक होता है। इसी

प्रकार कालेजों के प्रोफेसरों का भी वेतन ५-७ सेर चाँदी से कम नहीं होता। परन्तु यहाँ के बहुत-से परोपकारी और सन्तोषी अध्यापक केवल ७५) रुपया मासिक लेकर ही निर्वाह करते हैं और कालेज की सेवा उन प्रोफेसरों से अच्छी करते हैं जिनकी गुरु-दक्षिणा सुन कर निर्धन मनुष्य का कलेजा काँप उठे।

उस समय हमारे विद्यार्थीजी ने फारमेन क्रिश्चियन कालेज में ही अध्ययन करना पसन्द किया क्योंकि इसके अध्यापकगण उन दिनों योग्यता-पूर्ण समझे जाते थे। इस कालेज ने भी स्वार्थत्यागी ईसाई धर्म के सेवकों के कारण अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त की है। यहाँ पर भी उच्च योग्यता के मनुष्य थोड़े वेतन पर काम करते हैं। हाँ, विद्यार्थियों के रहन-सहन तथा धार्मिक विचारों के परिवर्तन का भय यहाँ अवश्य रहता है। वास्तव में भारतवर्ष में इन कालेजों की स्थापना ईसाई-धर्म के प्रचार के लिए ही की गई है। यह ईसाई धर्म के कालेज भारत के देहली, लाहोर, कानपुर, इलाहाबाद, लखनऊ तथा अन्य सभी बड़े-बड़े नगरों में स्थापित हैं। यद्यपि इन कालेजों की स्थापना से आर्यसमाज प्रवर्तक स्वामी दयानन्दजी तथा ब्रह्मसमाज प्रवर्तक राजा राममोहनराय आदि महात्माओं के आन्दोलन के कारण, ईसाइयों को वांछित

सफलता नहीं प्राप्त हो सकी, तथापि २-४ साल यहाँ शिक्षा प्राप्त कर लेने पर विद्यार्थियों में हिन्दुत्व का लव-लेश बहुत कम रह जाता है। चाहे वे ईसाई धर्म के अनुयायी न बनें परन्तु अपने धर्म से अवश्य गिर जाते हैं। बहुत से पाठकों को मेरी इन धर्म सम्बन्धी बातों से विस्मय होगा, क्योंकि प्रायः आधुनिक लोगों की समझ में धर्म का लक्षण नहीं आता। परन्तु हम यहाँ यह साफ कर देना चाहते हैं कि धर्म्म शब्द से हमारा मतलब किसी विशेष मत का समर्थन करना नहीं है। धर्म्म वही है जो मनुष्य को अपने स्वरूप में बनाये रक्खे। संस्कृत व्याकरण के अनुसार यह शब्द 'धृञ्' धातु से उणादि 'मन्' प्रत्यय करने पर होता है। जिसका अर्थ यह होता है कि 'जिससे किसी वस्तु की असलियत धारण की जावे' जैसे आँच की असलियत जलने से धारण की जाती है, जो जलता है वह अग्नि है, जलने के बाद राख है। जलना बन्द करते ही अग्नि ने अपना धर्म्म (जलना) छोड़ दिया इसलिये उसको अग्नि नहीं कहते बल्कि राख कहने लगते हैं। इसी प्रकार हमारे शास्त्रों के अनुसार जिस वर्ण का जो धर्म्म माना गया है, उसके छोड़ने से मनुष्य असलियत से गिर जाता है। इस गिरानेवाले को पातक (पाप) कहते हैं जो कि धर्म्म शब्द

का विरोधी है। इसलिये मनुष्य को अपने परम्परा से आये हुए धर्म्म का त्याग नहीं करना चाहिए क्योंकि अन्य धर्म्म उसके लिये पातक हैं। इससे अन्य धर्म्मों की निन्दा नहीं समझनी चाहिये क्योंकि सभी मनुष्यों को अपने-अपने धर्म्म को उत्तम बतलाने का अधिकार है। वास्तव में ठीक भी है। धर्म्म कोई बुरा नहीं। प्रायः सब धर्म्मों के अंग एक जैसे ही होते हैं, ऐसा कोई धर्म्म नहीं जो सच बोलने का विरोधी हो, ऐसा कोई धर्म्म नहीं जो परस्पर द्वेष रखने की शिक्षा देता हो, ऐसा कोई धर्म्म नहीं जो और जीवों को दुःख देने का उपदेश करता हो, इसलिए धार्मिक भेदभाव मूर्खों के लिए ही है। विद्वान् समदृष्टि होते हैं, परन्तु उनके प्राकृतिक धर्म्म का स्वरूप-परिवर्तन वे नहीं सहन कर सकते। इसलिए हमारा तो सिद्धान्त यही है कि 'धर्म्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां, महाजनो येन गतः स पन्थाः' अर्थात् धर्म्म का तत्त्व बहुत गहरा है, इसके लिए यही अच्छा है कि जिस मार्ग से हमारे पूर्वज गए, उसी से हम भी चलते रहें। धर्म्म और वेष जातीयता और देशीयता की निशानी है। जो जाति और देश अपने धर्म्म और वेष से दूर हट गए, संसार में उस जाति और देश का स्वरूप स्थायी नहीं रह सकता।

फोरमैन क्रिश्चियन कालेज के विद्यार्थी होने पर भी तीर्थरामजी के धार्मिक विचारों में नित्य दृढ़ता ही आती रही। यह कालेज के अन्य विद्यार्थियों के समान फैशन की लहर में नहीं पड़े किन्तु दिन-दिन सादगी में ही उन्नति करते थे। आजकल के विद्यार्थियों का हाल देख कर अचरज से स्तब्ध रह जाना पड़ता है। हम देखते हैं कि ब्राह्मणों के लड़के जिनमें से कोई अपने आप को बड़े अभिमान से मिश्र लिखते हैं, कोई चतुर्वेदी हैं, कोई त्रिवेदी हैं, कोई त्रिपाठी हैं, शौच-क्रिया करके मिट्टी से हाथ नहीं धोते। मुसल्मानों का छुआ हुआ खाने में ज़रा भी नहीं झिझकते। दिन भर चाहे कपड़े निकाले चारपाई पर लेटे रहें परन्तु भोजन के समय अवश्य कोट, पतलून, बूट और गले में नेकटाई धारण कर लेते हैं, क्योंकि बिना इस लिवास के मेज-कुर्सी पर खाना अच्छा नहीं लगता। विद्यार्थी तीर्थराम इन सब दुर्गुणों से दूर रहते थे। उनकी बोलचाल बहुत सीधी थी। उन्हें कालेज की पढ़ाई और आध्यात्मिक चिन्तन के सिवाय और कोई बात नहीं सूझती थी। अन्त में उन्होंने १९ वर्ष की अवस्था में फोरमैन क्रिश्चियन कालेज से बी० ए० की परीक्षा पास की। एन्ट्रेंस परीक्षा के समान इस परीक्षा में भी ये पंजाब विश्वविद्यालम में प्रथम रहे थे। प्रथम रहने के

कारण इनको ६०) रुपया मासिक छात्रवृत्ति भी मिलने लगी। तीर्थराम इसमें कुछ रुपया अपने खर्च के लिये रख लिया करते थे, बाकी सब घर भेज देते थे या अपने गुरुजी महाराज की सेवा में लगा देते थे। अपने लिए बहुत कम खर्च किया करते थे।

यह पहले कह आये हैं कि तीर्थराम की रुचि प्रारम्भ सेही गणित-शास्त्र में विशेष थी। गणित शास्त्र के अध्यापन का प्रबन्ध उन दिनों क्रिश्चियन कालेज की अपेक्षा लाहोर के गवर्नमेंट कालेज में अच्छा था। इसलिये विद्यार्थी तीर्थराम ने कालेज का बदल देना उचित समझा और गवर्नमेंट कालेज के विद्यार्थी बन गए। वहां दो वर्ष एम० ए० में खूब परिश्रम किया और इक्कीस वर्ष की अवस्था में पञ्जाब विश्वविद्यालय से गणित विषय में एम० ए० की उपाधि प्राप्त की। कालेज में पढ़ते समय इनके गुरूजी इनके पास बहुत आया जाया करते थे और समय-समय पर उचित उपदेश भी दिया करते थे। तीर्थराम अपने गुरु धन्ना भगतजी की आज्ञा का पालन बड़े प्रेम से किया करते थे। छात्रावस्था में जो उनके और धन्ना भगतजी के बीच पत्राचार होता था उसके पढ़ने से यह मालूम हो सकता है कि गुरु की आज्ञा के लिये इनके हृदय में कितना आदर था। ये अपना कार्य्यक्रम तथा समय-

विभाग भी अपने गुरुजी को लिख दिया करते थे। हम पाठकों को बतलाने के लिये उनके एक पत्र का सारांश जो कि उन्होंने तारीख़ ६ फर्वरी सन् १८६४ में अपने गुरूजी को लिखा था, नीचे देते हैं:—

"आपका कृपापत्र इस समय मिला। निहायत खुशी हुई। मैं आजकल सुबह पाँच बजे सोकर उठता हूँ और सात बजे तक पढ़ता रहता हूँ। फिर शौच आदि से निवृत्त होकर स्नान करता हूँ और व्यायाम करता हूँ। इसके पीछे पण्डितजी की ओर जाता हूँ। मार्ग में पढ़ता रहता हूँ। एक घंटे के पीछे उनके साथ गाड़ी में बैठ कर कालेज जाता हूँ। कालेज से आते समय मार्ग में दूध पीता हूँ। डेरे पर कुछ मिनट ठहर कर नदी की ओर जाता हूँ, वहाँ जाकर नदी के किनारे पर कोई आध घंटे के लगभग टहलता रहता हूँ। वहाँ से लौटते समय बाग़ में घूमता हूँ। वहाँ से डेरे पर आकर कमरे की छत पर चहल-कदमी करता हूँ। यह आप स्मरण रक्खें कि मैं चलते-फिरते पढ़ता बराबर रहता हूँ। अँधेरा होते ही कसरत करता हूँ और लेम्प जला कर सात बजे तक पढ़ता हूँ। फिर रोटी खाने जाता हूँ और प्रेम की तरफ़ भी जाता हूँ। वहाँ से आकर १० या १२ मिनट अपने मकान में कसरत

करता हूँ फिर कोई साढ़े दस बजे तक पढ़ता हूँ। इससे मुझे यह अनुभव हुआ कि यदि हमारी पाचनशक्ति अच्छी दशा में रहे तो हमको बहुत सुख और आनन्द प्राप्त हो, एकाग्रचित्त भी रह सकते हैं, परमात्मा को भी नहीं भूलते और अन्तःकरण की शुद्धता एवं पवित्रता भी प्राप्त होती है। बुद्धि और धारणा-शक्ति भी तीव्र होती है। पहले तो मैं खाता ही बहुत कम हूँ। दूसरे जो कुछ खाता हूँ, उसे खूब पचा लेता हूँ"।

इस पत्र के पढ़ने से पाठक अनुमान कर सकते हैं कि विद्यार्थी तीर्थराम अपने समय का कैसे उपयोग करते थे। वे चलते-फिरते भी पढ़ते रहते थे। एक क्षण भी व्यर्थ नहीं खोते थे। सायंकाल के समय जब प्रदोष के कारण चारों ओर अन्धकार छाया हुआ रहता है, उस समय वे व्यायाम करा करते थे क्योंकि यह समय पढ़ने लायक नहीं होता था। छात्रवर तीर्थराम के चरित्र से आजकल के उन विद्यार्थियों को उपदेश लेना चाहिये जो अपने बहुमूल्य समय के अधिक अंश को व्यर्थ और अनर्थ के कार्य्यों में व्यतीत करते हैं। मनुष्य को सबसे प्रथम स्वार्थ की सिद्धि करनी चाहिये। स्वार्थ को तो पशु भी भली भाँति समझते हैं। यदि कोई मनुष्य हो कर भी स्वार्थ को न समझे तो उसे पशु से भी गया बीता समझना चाहिये।

मनुष्य के पास जो समय स्वार्थ से बचे उसे परमार्थ में लगाना चाहिये, परन्तु व्यर्थ एक क्षण भी नहीं खोना चाहिये। और अनर्थ करना तो महापाप है। परन्तु आजकल के लोगों की दशा देख कर खेद होता है कि ये स्वार्थ का भी ध्यान न रख कर व्यर्थ अनर्थ के कार्यों में बड़ा अनुराग दिखाते हैं। देखा गया है कि बहुत से विद्यार्थी जो ताश शतरंज आदि व्यर्थ खेलों के शौक़ीन होते हैं, अपने व्यसन की धुन में कालेज तक में ठीक समय पर उपस्थिति नहीं होने पाते, जिसके परिणाम में उनकी उपस्थिति संख्या (Percentage) कम हो जाती है, परीक्षा के प्रवेश में भी बाधा पड़ जाती है और अन्त में यदि किसी प्रकार अध्यापकों की ख़ुशामद करके बड़े आदमियों की सिफ़ारिश का सहारा लेकर परीक्षा में प्रवेश भी हो गये तो सफल नहीं होते। परन्तु व्यर्थ कार्य से नहीं हटते। इसी प्रकार बहुत से क्रूर विद्यार्थी अनर्थ के भी शौक़ीन होते हैं। कालेज जाते समय यदि रास्ते में कोई दुखित पागल मनुष्य उन्हें मिल गया तो उसके पत्थर मारना ही शुरू कर देंगे, उसे बुरी तरह से चिढ़ायेंगे, तरसायेंगे चाहे कालेज में ग़ैरहाज़िर हो जायें, पर जब तक या तो कोई भला आदमी उन्हें शर्म न दिलवायगा या उस पागल के हाथ से सिर में एक दो पत्थर न खालेंगे तब

तक न मानेंगे । इसे ही अनर्थ कहते हैं । विद्यार्थी तीर्थराम व्यर्थ और अनर्थ के कार्यों से घृणा करते थे । उनके पास जो समय स्वार्थ से बचता था, छात्रावस्था में भी उसे वे परमार्थ में लगाया करते थे । विद्यार्थियों को उनका अनुकरण करना चाहिये और उनके पास जो समय स्वार्थ से बचे उसे उन्हें परमार्थ में लगाना चाहिये। तीर्थरामजी के इसी पत्र से यह भी मालूम होता है कि उन्हें अपनी शारीरिक दशा सुधारने की भी बड़ी चिन्ता थी । बचपन में माता का पोषण न मिलने से ये प्रकृति से ही दुबले पतले रह गये थे। इनको अपने शरीर को हृष्ट-पुष्ट बनाने का बड़ा ध्यान था । इसीलिये ये व्यायाम तथा भ्रमण और शुद्ध वायु का सेवन बहुत किया करते थे । आजकल के विद्यार्थियों को भी अध्ययन के साथ साथ ही अपने आरोग्य का भी पूरा ध्यान रखना चाहिये, क्योंकि धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का मूल साधन भी एक मात्र आरोग्य ही है । रोगी मनुष्य न धर्म्म का पालन कर सकता है न अर्थ का सञ्चय कर सकता, न काम-वासनाओं का अनुभव कर सकता है और न मोक्ष के लिये प्रयत्न ही कर सकता है । अस्तु, तीर्थरामजी अन्त में अपना स्वास्थ्य अच्छा बनाने में सफल हुए । सन्यास आश्रम में जब कि लोग इनके आध्यात्मिक ज्ञान को देख कर चकित होते थे वैसे ही इनके शारीरिक बल को देख कर भी सब हैरान थे ।

प्रोफ़ेसरी

जब लाहोर के गवर्नमेंट कालिज से, तीर्थराम एम, ए० हो गए तब इनके प्रिंसिपल मिस्टर डब्ल्यू० बेल ने चाहा था कि ये प्रोविन्शियल सिविल सर्विस (डिप्टी-कलक्टरी) की परीक्षा दें। परन्तु गुसाँई तीर्थराम जैसे शुद्ध वृत्ति के मनुष्य ऐसे जाल में फँसना कब पसन्द कर सकते थे। उन्होंने साहब से इन्कार कर दिया और अपनी यह इच्छा प्रकट की कि "मैंने जिस गणित विषय को इतने परिश्रम से पढ़ा है, उसको मैं विद्यार्थियों को पढ़ाऊँगा" अर्थात् इनकी रुचि प्रोफेसरी में हुई। परमात्मा ने इनकी इच्छा पूरी की। एम० ए० पास करने पर यह स्यालकोट के मिशन कालेज में प्रोफेसर के पद पर नियुक्त हुए। थोड़े समय यह गवर्नमेंट कालेज लाहोर में रीडर भी रहे थे। इसके पश्चात् लाहोर के फोरमैन क्रिश्चियन कालेज में भी ये २ वर्ष तक गणित-शास्त्र के अध्यापक रहे। प्रोफेसर तीर्थराम गणित विषय में इतने अनुरक्त थे कि इन्होंने सरकारी छात्र-वृत्ति पाकर केम्ब्रिज विश्व-विद्यालय में पढ़ कर रेङ्गलर की परीक्षा देने का विचार भी किया। छात्र-वृत्ति प्राप्त करने के लिए उद्योग भी किया पर सफल न हुए और यह छात्र-वृत्ति एक मुसल्मान विद्यार्थी को मिल गई, यद्यपि वह विद्यार्थी

योग्यता में प्रोफेसर तीर्थराम से बहुत कम था। परन्तु ईश्वर की लीला विचित्र है। उसे इन्हें रेङ्गलर साहब बनाना स्वीकार नहीं था, किन्तु उसे इन्हें संन्यासी रामतीर्थ बनाना था। उसे इनके प्रिय सम्बन्धियों को इनके वियोग का महादुःख दिखाना था, इनकी प्रियतमा गृहिणी को रुलाना था, इनके नन्हें-नन्हें बच्चों को पितृहीन बनाना था, इनके वृद्ध पिता को सुशिक्षित पुत्र वियोग की भारी व्यथा का अनुभव कराना था, भारत अमेरिका, जापान आदि देशों में इनसे वेदान्त का प्रचार कराना था। परमेश्वर दयालु कहलाता है परन्तु उसकी दया का लक्षण सर्वसाधारण की समझ में आना कठिन है। बहुत-सी रोमाञ्चकारी दुःखद घटनाओं को देख कर तो हमें उसके न्याय में सन्देह होने लगता है। परन्तु यह सम्भव नहीं कि एक सर्व-व्यापक न्यायकारी प्रभु कभी अन्याय करे। पर यदि परमेश्वर वास्तव में कोई न्यायकारी शक्ति है तो उसको चाहिए कि वह अपनी इस नीति को कम से कम इतनी सरल अवश्य बनावे कि विद्वान् लोग तो उसके न्याय के रहस्य को समझ सकें और दूसरों को भी वकीलों की भाँति समझा सकें, अन्यथा समय बड़ा बेढब आ रहा है। यह धाँधली बहुत थोड़े दिन चलेगी, नास्तिकों की संख्या बढ़ जायगी, उसकी प्रजा बाग़ी हो जायगी, लोगों

का जो उसमें अटल विश्वास है वह कुछ दिनों में काफ़ूर हो जायगा।

प्रोफेसर रामतीर्थ को केम्ब्रिज जाने के लिये छात्रवृत्ति न मिलने से बड़ी निराशा हुई। इस समय पर उनको थोड़े दुःख का अनुभव भी करना पड़ा परन्तु क्या कर सकते थे। ईश्वर के न्याय पर विश्वास करके चुप बैठे रहे। हमारी समझ में यह घटना भी उनके संसार त्याग में एक कारण हुई।

सन्यास

विद्यार्थी अवस्था में ही तीर्थराम के हृदय में वैराग्य का अंकुर लग गया था। उन दिनों जो चिट्ठियां ये अपने गुरु धन्ना भगतजी के पास भेजा करते थे, उनसे मालूम होता है कि संसार से इनको तभी कुछ कुछ विरक्ति हो गई थी। उन चिट्ठियों में से एक चिट्ठी का संक्षेप हम नीचे देते हैं। ये अपने गुरु को लिखते हैं:—

"महाराजा जी,

परमेश्वर बड़ा ही चंगा है। मुझे बड़ा ही प्यारा लगता है। कृपया आप उसके साथ प्रेम रक्खा करें। वह कभी कभी आपके साथ सख़्ती करता है ये उसके विनोद हैं। वह आपके साथ दिल्लगी करना चाहता है। हमारा कर्तव्य है कि हंसनेवालों से नाराज़ न होवें। किसी और

पत्र में आपको उसकी और भी बहुत सी बातें लिखूँगा। यह पत्र मैं मेज़ पर रख कर लिख रहा हूँ। यहां प्रातः काल कुछ खांड गिर गई थी उस खांड के पास चार पाँच चीटियाँ इकट्ठी हो रही हैं और ये सब मेरी कलम और अक्षरों की ओर ताक रही हैं और आपस में बड़ी बातें कर रही हैं।" इसके आगे तीर्थरामजी ने बड़ी सुन्दर आलंकारिक भाषा में चीटियों की बातों का वर्णन किया है। कोई चींटी तो कहती है कलम की तारीफ़ करनी चाहिये क्योंकि इसीके कारण सुन्दर-सुन्दर अक्षर बन रहे हैं, इस पर दूसरी चींटी कहती है, यह प्रशंसा क़लम की नहीं किन्तु इन अंगुलियों की है जिनके इशारे से क़लम चल रही है, इस पर तीसरी कहती है कि यह प्रशंसा अंगुलियों की नहीं है किन्तु इन लम्बे लम्बे बाजुओं की है जिन के आधार पर यह सब निर्भर है। इस पर सबसे बड़ी चींटी कहती है, कि यह बाजुओं की करामात नहीं है, बल्कि इस लम्बे चौड़े धड़ का दारमदार है जिसके सहारे यह सब काम हो रहा है" इसके बाद गुसांई तीर्थरामजी लिखते हैं कि इसी प्रकार मनुष्य के शरीर और प्राणों से परे भी कोई वस्तु है वह परमात्मा है उसी के सहारे सब भूत चेष्टा करते हैं। संसार में जो कुछ होता है वह उसकी इच्छा से ही होता है। बिना तारवाले

के पुतलियाँ नहीं नाच सकतीं। बिना बांसुरी बजानेवाले के बांसुरी नहीं बज सकती। इसी प्रकार संसार में मनुष्य बिना उसकी आज्ञा के कोई काम नहीं कर सकता। जैसे तलवार का काम मारना है मगर वह तलवार बिना चलानेवाले के नहीं चल सकती, इसी तरह से कुछ लोगों का स्वभाव चाहे जितना खराब क्यों न हो, जब तक उन्हें परमेश्वर न उकसाये तब तक वे हमें कष्ट नहीं पहुँचा सकते। जैसे बादशाह के साथ सुलह करने से सारी सल्तनत के कर्म्मचारी मित्र बन जाते हैं, इसी तरह से परमात्मा को राजी रखने से सारा संसार हमारा अपना हो जाता है।

इस पत्र के लेखक को बहुत से नवयुवक शायद पागल बतलावें परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि स्वामी रामतीर्थजी तीर्थराम रहते हुए ही विरक्त हो चुके थे। वे प्रति क्षण, उस बादशाहों के बादशाह त्रिलोकीनाथ परमपिता परमेश्वर के चिन्तन में ही रहते थे। सिवाय ईश्वर स्मरण के उन्हें कुछ अच्छा न लगता था। उनके देहान्त के पश्चात् उनके एक सहपाठी महाशय ने उर्दू के एक मासिक-पत्र में एक लेख लिखा था जिसमें वे कहते हैं:—'एक दिन मैंने गुसांई जी से पूछा कि आप की यथार्थ इच्छा क्या है? कालेज के विद्यार्थियों को

पढ़ाने की या और कुछ । इस पर उन्होंने उत्तर दिया कि सिलसिला थोड़े दिनों का है । स्त्री और बच्चों के लिए कुछ इकट्ठा कर देने के पीछे रात्रि दिन देशाटन और उपदेश करना ही मेरी हार्दिक इच्छा है । जहाँ कहीं जाऊँगा विद्यार्थियों को पढ़ा कर थोड़ा सा ले लिया करूँगा । उपदेश द्वारा पारमार्थिक अविद्या को दूर करना ही मेरा मुख्य कर्तव्य है ।' इससे पाठक भली भाँति जान सकते हैं कि इनको संसार के बनावटी पदार्थों से सदा ही घृणा रहती रही परन्तु यह विचार इन्होंने सर्व साधारण में सन् १८९७ के अक्टूबर मास में दीवाली के दिन प्रकट किया था । उस समय इनकी अवस्था केवल २४ वर्ष की थी । दीवाली का त्यौहार था । सांसारिक लोग सब ज्ञान उपदेश को भूल कर जूआ आदि खेलों में मस्त थे । घर घर में बालकों के छोड़े हुए पटाखों के शब्द हो रहे थे । सारा भारतवर्ष हर्ष में मग्न था । जगह जगह कई प्रकार की रोशनी की जगमगाहट से चका-चौंध हो रही थी । इधर भगवान् रामचन्द्र की विजय के उपलक्ष्य में मङ्गल गान हो रहे थे । संसार के जाल में फँसाने के लिए सब प्रकार की सामग्री तैयार थीं, उधर हमारे नवयुवक गुसाईंजी इस सांसारिक जाल को तोड़ कर निकल जाने का निश्चय

कर चुके थे। गुसाईंजी कर्मवीर थे उनके लिए यह सामग्रियाँ तुच्छ थीं। उन्होंने इन सब लोभों को लात मारी। अपनी आध्यात्मिक-शक्ति के प्रभाव से एक दम सांसारिक बन्धन को तोड़ दिया। उसी दिन उन्होंने अपने पिताजी को निम्न-लिखित शब्दों में एक पत्र लिखाः—

"आपके लड़के तीर्थराम का शरीर तो अब बिक गया, बिक गया! राम के आगे! उसका शरीर अब अपना नहीं रहा। आज दीवाली के दिन अपना शरीर हार दिया और महाराज (परमात्मा) को जीत लिया। आपको बधाई है। अब जिस चीज़ की ज़रूरत हो मेरे मालिक से माँगो। फौरन ख़ुद दे देगा......महाराज परमेश्वर ही हम गुसाइयों का धन है। अपने निज के सच्चे धन को त्याग कर संसार की झूठी कौड़ियों के पीछे पड़ना हमको उचित नहीं। और उन कौड़ियों के न मिलने पर अफ़सोस करना तो बहुत ही बुरा है। अपने असली माल और दौलत का मज़ा एक दफ़ा ले तो देखो।' इस प्रकार से दीवाली के दिन उनका अंतिम निश्चय हो जाने के पश्चात् भी वे २ वर्ष तक कालेज में प्रोफेसरी का काम करते रहे। इसके साथ साथ ही वे अपनी मानसिक उन्नति भी करते रहे। सन् १८९९ में इन्होंने यथाविधि संन्यास धारण कर लिया। संसार के

सब झंझटों का परित्याग कर दिया। प्राचीन प्रथा के अनुसार इन्होंने अपना नाम भी तीर्थराम के स्थान पर रामतीर्थ रक्खा। इस घोर संकट के समय में उनके प्यारे घरवालों की, स्नेह पात्र मित्रों की, बूढ़े पिता की, हृदयेश्वरी धर्मपत्नी की और इनके छोटे-छोटे सुकुमार बच्चों की क्या दशा थी, यह वर्णन करने के लिए वज्र के हृदय की आवश्यकता है, दुर्बल हृदय के मनुष्य के लिए यह असम्भव है। हम केवल आपके सामने एक कविता रख देते हैं जो उस समय के प्रसिद्ध मासिक-पत्र सुदर्शन में छपी थी। इससे आपही जो कुछ समझें सो समझ लें। कविता इस प्रकार है:—

गुणनिधान, मतिमान सुखी सब भाँति एक लवपुरवासी।
युवा अवस्था बीच विप्र कुल केतु हुआ है सन्यासी॥
विविध रीति से बस विरक्त को सुहृद बन्धु समुझाय थके।
गङ्गाजी के प्रवाह ज्यों पर उसे न वे सब रोक सके॥
वृद्ध पिता माता की आशा बिन व्याही कन्या का भार।
शिक्षा हीन सुतों की ममता पतिव्रता नारी का प्यार॥
सन्मित्रों की प्रीति और कालेजवालों का निर्म्मल प्रेम।
त्याग एक अनुराग किया उसने विराग में तज सब नेम॥
प्राणनाथ ? बालक सुत दुहिता यों कहती प्यारी छोड़ी।
"हाय वत्स ! वृद्धा के धन ! यों रोती महतारी छोड़ी॥

चिर सहचरी 'रयाजी' छोड़ी रम्य तटी रावी छोड़ी ।
शिखा सूत्र के साथ हाय ! उन बोली पञ्जाबी छोड़ी ॥
धन्य पञ्चनद्-भूमि जहाँ इस बड़भागी ने जन्म लिया ।
धन्य जनक जननी जिनके घर इस त्यागी ने जन्म लिया ॥
धन्य सती जिनका पति मरने से पहले हो जाय अमर ।
धन्य धन्य सन्तान पिता जिनका जगदीश्वर पर (है) निर्भर ॥
शोक ग्रसित हो गई लवपुरी उसकी हुई बिदाई जब ।
द्रवी-भूत कैसे न होय मन सन्यासी हो भाई जब ॥
खिन्न अश्रुमुख वृद्ध लगे कहने मंगल तब मारग हो ।
जीवन मुक्ति सहाय ब्रह्मविद्या में सत्वर पारग हो ॥
कुछ मित्रों ने हृदय थाम कर कहा कि प्यारे सुन लेना ।
बात अन्त की आज हमारी ज़रा ध्यान इस पर देना ॥
समदर्शी ऋषि मुनियों को भी भारत प्यारा लगता था ।
इस कारण वह विद्यालय में जग से न्यारा लगता था ॥
सर्व त्याग कर महाभाग जो देशोन्नति में दे जीवन ।
धन्यवाद देते हैं सुरगण भी उसको हो प्रमुदित मन ॥
अपनी भाषा भेष भाव औ भोजन प्यारे भाई को ।
नहीं समझता उत्तम समझो उससे भली लुगाई को ॥
एवमस्तु कर उच्चारण इन सबके उसने उत्तर में ।
कहा 'अलविदा' और चला वह मनभावन उस अवसर में ॥

लगे बरसने पुष्प और जय जय की तब हो उठी ध्वनी।
मानों भिक्षुक नहीं वहाँ से चला विश्व का कोई धनी॥
ज्यों नगरी होय स्वच्छता जब आता है कोई लाट।
त्यों वन पर्वत प्रकृति परिष्कृत हुए समझ मानो सम्राट्॥
निष्कंटक पथ हुआ पवन से वारिद् ने जल छिड़क दिया।
कड़क तड़ित ने दई सलामी आतपत्र वृक्षों ने किया॥
विहङ्ग कुल ने निज कलरव से उसका स्वागत गान किया।
श्वापद् शान्त हुए मृग गण ने दक्षिण में आमान किया॥
श्रेणीबद्ध फलित तरुओं ने उसको झुक कर किया प्रणाम।
पुष्पित लता और बिरवों ने कुसुम बिछाये राह तमाम॥
खड़ा हिमालय निज उन्नति पर मस्तक तत्पद् धारन को।
हुई तरङ्गित सुरसरि तब अभिषेक पुनीत करावन को॥
शिक्षा देती मानो सबको जननी सदृश प्रकृति सारी।
विषय विरक्त ब्रह्म चिन्तन में नर सबके सब अधिकारी॥

सन्यास लेने के समय स्वामी जी की अवस्था २६-२७ वर्ष की थी। इनके दो छोटे पुत्र थे एक कन्या थी। कोमल हृदय के पाठक सोचेंगे कि स्वामी रामतीर्थ बड़े पाषाण हृदय थे जो उन्होंने अपने दुधमुँहे पुत्र तथा अविवाहिता पुत्री पर भी दया नहीं की। परन्तु इसका संक्षिप्त उत्तर बहुत आसान है कि कर्तव्यपरायण

वीर अपने कर्तव्य के पालन में ऐसी बातों को ध्यान में नहीं लाता। राजा हरिश्चन्द्र ने जब चाण्डाल के यहाँ स्मशान सेवक का कार्य्य स्वीकार किया था तो उन्हें अपने प्राणाधिक प्रिय पुत्र रोहिताश्व के मरने पर अपनी हृदयेश्वरी रानी शैव्या की प्रार्थना पर भी स्मशान का कर नहीं छोड़ा था और शैव्या के एक मात्र परिधान वस्त्र में आधा फाड़ कर वसूल किया था। इसलिये दृढ़व्रत मनुष्यों के लिए ऐसे करुणोत्पादक भावों को पार करना कठिन नहीं। स्वामी रामतीर्थजी तो वेदान्त के पण्डित थे, संसार के चरित्र को खूब जानते थे, उनके लिए ऐसे समय पर निर्मोह होना कोई अचरज की बात नहीं। भारतवर्ष वह देश है जहाँ पर साधारण मनुष्यों की तो क्या बात, स्वर्गीय ऐश्वर्य्य के भोगनेवाले राजाओं ने समय पड़ने पर कर्तव्यवश होकर अपने इकलौते प्रिय पुत्र तक पर आरी चलाने से मुँह नहीं मोड़ा। जो लोग मयूरध्वज (मोरध्वज) के नाम से परिचित हैं उनसे यह बात छुपी नहीं है। भारत में भी पंजाब विशेषतया वीर देश है। यहाँ के वीरों की कथायें सुन कर शक्तिहीन मनुष्यों के रक्त में भी उत्साह का सञ्चार होता है। धर्मवीर बालक हकीकतराय को इसी वीरभूमि ने पैदा किया था। मुसल्मानी राज्य होने

के कारण उस ज़माने में इस्लाम धर्म का प्रचार करने के लिए शासक लोग बुरे भले सब उपायों का अवलम्बन कर रहे थे। बालक हकीकतराय को जब मुसल्मान होने के लिए बाध्य किया गया तो इस वीर बालक ने साफ इन्कार कर दिया। इनको कई प्रकार के भय दिखलाये और कहा गया कि यदि तुम इस्लाम धर्म स्वीकार नहीं करोगे तो जीते हुए ही दीवार में चुन दिये जाओगे। पर हकीकतराय इन धमकियों को क्या समझते थे। कर्तव्य-पालन के सामने वे अपने शरीर का त्याग साधारण बात समझते थे। अन्त में हकीकतराय को दीवार में लगाया गया और साथ ही अपना विचार बदलने के लिए भी कहा गया। परन्तु उन्होंने इन नीचता से भरे हुए प्रश्नों से घृणा की। पाठको! वह बात याद करके पत्थर भी पसीज जायेंगे, शिलायें भी रो उठेंगी जबकि हकीकतराय को गले तक दीवार में चुन दिया था और उन से मुसल्मान होने को कहा गया जिसका सख़्त जवाब उन्होंने अपनी आँखों के इशारे से दिया था क्योंकि गला रुक जाने के कारण वे न उस समय बोल सकते थे, न गर्दन ही हिला सकते थे। हिन्दुओं के प्रत्येक बालक के लिए यह कथा हिन्दी की पहली पुस्तक का पहला पाठ होना चाहिये। और आजकल के नवयुवकों

को शिक्षा लेनी चाहिये कि उनके पूर्वज धर्म का कितना महत्व समझते थे। यह दुःख का विषय है कि आज इसको लोग कुछ नहीं समझते और ज़रा से लोभ में फँस कर धर्म कर्म सब छोड़ बैठते हैं। आजकल के तो बहुत से कलुषित बुद्धि राजाओं की यह दशा देखी जाती है कि वे जगत् की विषय-वासनाओं में फँसकर एक बाज़ारू वेश्या के कहने पर सर्वस्व छोड़ कर मुसल्मान होने के लिए तैयार हो जाते हैं। इस पुनीत भारत-भूमि के लिए इससे बढ़ कर लज्जा की बात कुछ नहीं हो सकती कि इसके बहुत से कुबुद्धि पुत्र निन्दनीय काम-वासनाओं में फँस देश, जाति, धर्म्म, सबसे मुँह मोड़ बैठते हैं। इसलिए पाठको ! देश के नवयुवकों की बुद्धि का सुधारना ही देश के अभ्युदय और उत्थान का उपाय है। इस समय अनेक रामतीर्थों की आवश्यकता है। आप स्वामी जी को सन्यास लेते हुए देख कर आश्चर्य न करें। यदि वे सन्यासी न होते तो उनके अमृतमय उपदेश को प्राप्त करने का सौभाग्य कहाँ मिलता ? यह मनुष्य की प्राकृतिक कमज़ोरी है कि वह गृहस्थ का बहाना लेकर परोपकार के कार्यों से दूर भागता है। स्वामीजी इन बातों में कच्चे नहीं थे। वे सब रहस्य समझते थे। उनकी बुद्धि बड़ी

शुद्ध और निर्मल थी। वे कर्तव्य-पालन भली भाँति जानते थे। सांसारिक सम्बन्धियों के उपदेश, मोह-जाल में फँसे हुए वृद्धों के आदेश, और स्वार्थलोलुप स्त्री के सन्देशों ने उनके पवित्र चित्त पर कुछ भी प्रभाव न डाला। अस्तु, अब से गुसाईं तीर्थरामजी को हम स्वामी रामतीर्थजी के नाम से ही स्मरण करेंगे।

सन्यासी होने पर स्वामीजी एकान्त-सेवन करने के लिए हिमालय पर्वत पर चले गये वहाँ से उन्होंने एक उर्दू भाषा में मासिक-पत्र भी निकाला। इस मासिक-पत्र का नाम 'अलिफ़' था यह लाहौर से प्रति मास प्रकाशित होता था। हिमालय पर से ही उन्होंने पहले पहल अँग्रेज़ी में एक छोटी-सी पुस्तिका लिखी थी। इसमें उन्होंने हिमालय के दृश्यों (Himalayan Scenes) का वर्णन किया था। वर्णन बड़ा ही भावों से भरा हुआ था। उदाहरण के लिये हम उनके एक लेख का कुछ भाग नीचे देते हैं। स्वामीजी लिखते हैं:—

"संसार के हे मनुष्यों ! तुम यह अच्छी तरह से जान लो कि युवतियों के कपोलों की लालिमा, मनोहर रत्नों और बहुमूल्य आभूषणों में तथा बड़े बड़े महलों में सुमेरु की काल्पनिक सुन्दरता और मोहित करनेवाले पदार्थों का अंश भी नहीं मिल सकता। और जब तुम

अपने आत्मस्वरूप का बोध प्राप्त कर लोगे तो ऐसे ऐसे अगणित सुमेरु तुम्हें अपने आप में दिखाई देंगे। सारी प्रकृति तुम्हारी पूजा करेगी। बादलों से लेकर कंकड़ों तक नीले आकाश से लेकर हरी भूमि तक और आकाश में उड़नेवाले जीवों से लेकर छछून्दर तक जितने जीव इस संसार में हैं सब तुम्हारी आज्ञा पालन करने के लिए तैयार रहेंगे। कोई देवता भी तुम्हारी आज्ञा टालने का साहस न करेगा।"

इसी 'सुमेरुदर्शन' नामक शीर्षक में वे आगे लिखते हैं:—

"हे आकाश! अब तू स्वच्छ हो जा, भारतभूमि को अज्ञान से ढकनेवाले मेघों! दूर हो जाओ। हमारी इस पवित्र भूमि पर मत मंडराओ। हे हिमालय की बर्फ़! तुम्हारा प्रभु तुम्हें यह आज्ञा देता है कि तुम अपनी पवित्रता और शुद्धता को स्थिर रक्खो। द्वैतभाव से कलुषित जल कभी इस मैदान में मत भेजो।"

इसी निबन्ध में ही स्वामीजी महाराज एक स्थान पर 'माया' शीर्षक में लिखते हैं:—

"राम के सामने एक नवयुवक ने सूँघने के लिए एक सुन्दर गुलाब का फूल तोड़ा। ज्योंही उसको सूँघने के लिये नाक के सामने लाया त्योंही फूल में बैठी हुई एक शहद की मक्खी ने उसकी नाक की नोंक में काट

खाया। वह नवयुवक मारे दर्द के रोने लगा, उसके हाथ से गुलाब का फूल गिर पड़ा।

क्या प्रत्येक गुलाब के फूल में शहद की मक्खी होती है? निःसन्देह ऐसा कोई भी विषयों से परिपूर्ण गुलाब नहीं है जिस में दुःख रूपी मधुमक्खी न छिपी हो। जो वासनायें रोकी नहीं जातीं उनके लिए पीड़ा-रूपी दण्ड मिलना अनिवार्य है।"

इस (Himalayan Scenes) सारे निबन्ध का भाव देने के लिए हम यह स्थान उचित नहीं समझते क्योंकि पुस्तक का आकार हम छोटा रखना चाहते हैं जिससे सर्व साधारण भी बहुत थोड़े समय में स्वामीजी के पवित्र जीवन-चरित्र को पढ़कर लाभ उठा सकें और अपनी आत्मा को शुद्ध कर सकें। परन्तु व्युत्पन्न पाठकों से हमारा यह अनुरोध है कि यदि उन्हें समय मिले तो स्वामीजी के (Himalayan Scenes) निबन्ध को अवश्य पढ़ें। इससे उन्हें बड़ा उपदेश मिलेगा।

धर्म का अनुराग

स्वामी रामतीर्थजी के संन्यासी होने से पहिले ही लोगों की रुचि इन व्याख्यानों में बड़ी रहा करती थी। जिस सभा में ये व्याख्यान दिया करते थे वहाँ श्रोताओं की कमी न रहती थी। इनके व्याख्यान शान्त-रस से

भरे हुए होते थे। वाक्य वाक्य में भक्ति की झलक दिखाई देती थी। सुनते हैं छात्रावस्था में ही जब वे सनातन धर्म सभाओं में स्वामी रामकृष्ण परमहंस आदि की भक्ति के विषय में व्याख्यान दिया करते थे, तब व्याख्यान देते देते उनकी आँखों से आँसुओं की धारा वह लग जाती थी। श्रोता लोग भी, चाहे कितने ही कठोर हृदय होते परन्तु रोने लग जाते थे। मतलब यह है कि विद्यार्थी अवस्था में भी उनके व्याख्यानों की धूम सारे पंजाब में मच रही थी। सन्यासी होने के अनन्तर तो उनकी वक्तृताओं के प्रभाव का क्या ठिकाना था। तब तो इनकी हिमालय के पर्वत पर की हुई तपस्या के कारण इनकी वाणी में एक विशेष प्रभाव आगया था। हिमालय पर्वत पर तप करते हुए भी स्वामीजी महाराज धर्म-सभाओं में अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए उपदेश देने को जाया करते थे। सन् १६०१ में भगवान् कृष्ण की जन्म-भूमि मथुरा नगरी में एक बड़ा शानदार 'धर्म महोत्सव' हुआ था। इसमें भारत के प्रायः सभी प्रसिद्ध विद्वान् सम्मिलित हुए थे। सबकी प्रार्थना से स्वामीजी महाराज ने ही इस उत्सव के सभापति का आसन ग्रहण किया था। इस उत्सव के प्रबन्धकों ने यह नियम रक्खा था कि प्रत्येक व्यक्ति अपने धार्मिक विचारों का मण्डन

करे, उसके धर्म में जो अच्छी बातें हों उनको दिखलावे, परन्तु अपने व्याख्यान या निबन्ध में अन्य धर्म्मावलम्बियों पर आक्षेप न करे। जिस सभा में ऐसा नियम हो, उसमें सभापति होने के योग्य उस समय श्री स्वामीजी महाराज ही थे। ऐसा पक्षपात-रहित सभापति मिलना साधारण बात नहीं थी। ऐसी सभा में जहाँ धर्म सम्बन्धी उत्कृष्टता दिखलाने में प्रतिवादियों के मन की आलोचना करनी पड़े वहाँ सभापति का कार्य बहुत कठिन होता है। परन्तु स्वामी रामतीर्थ अपने विशुद्ध चरित्र के बल से केवल प्रेम भरे शब्दों द्वारा और मीठी मुसकान से सब झगड़ों को शान्त कर देते थे। मतमतान्तरों के वैमनस्य की ज्वाला उनकी उपस्थिति में नहीं उठ सकती थी। इस महोत्सव के तीसरे दिन कुछ अज्ञान पादरियों ने 'धर्म महोत्सव' के नियमों को भंग करके हिन्दू-धर्म और वेदों पर कुछ कड़े आक्षेप किये थे। इससे हिन्दू जनता में बड़ा असन्तोष फैल गया था। सारी सभा में खलबली मच गई थी। यदि और कोई सभापति होता तो अवश्य उपद्रव हो जाता। क्योंकि मथुरा जैसी धर्मपुरी में हिन्दू-धर्म पर आक्षेप करना मज़ाक नहीं है। उस पर भी भगवान् श्री कृष्णचन्द्रजी महाराज के चरित्र पर ही विधर्म्मियों ने ज़्यादा आक्षेप किये। मथुरा हमारे भगवान्

की मातृ-भूमि है। वहाँ उनके नाम पर प्राणों को न्यौछावर करनेवाले मनुष्यों की संख्या अधिक है। मथुरा के मच्छरों में भी भगवान् की भक्ति कूट-कूट कर भरी है। वे भी दिन रात इनके गुणों का गान किया करते हैं। दूसरे यह हिन्दुओं का स्थान है यहाँ पर बड़े-बड़े बली, दिन रात लड्डू पेड़ा खाने वाले पहलवान पण्डे लोग विराजमान हैं। दंगा करने में भी ये लोग एक ही हैं। ऐसे स्थान पर पादरी लोगों ने अपने इस दुःसाहस के तार से मौत को बुलावा दिया था। परन्तु जहाँ मधुर-मूर्त्ति स्वामीजी विराजमान थे वहाँ ऐसी दुर्घटना नहीं हो सकती थी। उन्होंने उठ कर बड़े प्रेम-भरे शब्दों से इस झगड़े को शान्त किया। स्वामीजी जब खड़े हुए तो लोग बड़े प्रसन्न होकर सोचने लगे कि ईसाई-मत की धज्जियाँ उड़ायँगे। परन्तु राम बादशाह ने तो किसी को कटु शब्द कहना ही नहीं सीखा था। इन्होंने अपनी ओजस्विनी वक्तृता द्वारा पादरी स्काट के सन्देहों को दूर किया और अन्त में उससे कहाः—'पादरी साहब, यदि आप की वेदों के विषय में शंकाओं का समाधान मेरे इतने वक्तव्य से नहीं हुआ हो तो चाहे जिस समय पर मुझसे मिलकर अपनी शंकायें मिटा सकते हैं'। पादरी स्काट ने कुछ उत्तर नहीं दिया

किन्तु कुछ उपेक्षा-बुद्धि से हँस कर चुप बैठ गए। स्वामीजी के व्याख्यान की वर्षा से अज्ञान अन्धकार की सारी धूलि बैठ गई। श्रोता लोग बड़े प्रसन्न थे।

इस धर्म्म-महोत्सव में गोस्वामी श्रीराधाचरणजी की 'सनातनधर्म' और 'वैष्णवधर्म' पर बड़ी प्रभावशाली वक्तृतायें हुई थीं। एक मुसल्मान सज्जन ने 'इस्लाम मत क्या है' इस विषय पर बड़ा हृदयग्राही व्याख्यान दिया था। उनके भाव बहुत ही उदार थे। आजकल के मुसल्मानों को उनके चरित्र से उपदेश लेना चाहिए। उक्त सज्जन ने मुसल्मानों के पैग़म्बर और धर्म्म-ग्रंथ क़ुरान-शरीफ़ की तारीफ़ करते हुए कहा था :—

'दीन इस्लाम हिन्दुओं से नफ़रत करना नहीं सिखलाता है। हिन्दू मुसल्मान दो नहीं, एक हैं। मुझे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी के नाम लेने में जो आनन्द मिलता है और उनकी गीता के पाठ करने में जो शान्ति प्राप्त होती है वह आनन्द और वह शान्ति मुझे कहीं भी नहीं मिलती।'

मथुरा में स्वामीजी की वक्तृताओं का इतना प्रभाव रहा कि धर्म-महोत्सव के समाप्त हो जाने पर भी वहाँ के रहनेवालों ने अन्य कई सभाओं में व्याख्यान देने के लिए प्रार्थना की। स्वामीजी ने जनता के आग्रह से

मथुरा की सज्जन-सुबोधिनी सभा तथा जुबली-एसोसियेशन आदि अन्य कई स्थानों में उपदेश दिया।

स्वामीजी के व्याख्यान में कुछ विलक्षण आकर्षण-शक्ति थी। जो मनुष्य इनके व्याख्यान का स्वाद एक बार ले लेता था वह सदा इनका व्याख्यान सुनने के लिये लालायित रहता था। इसी कारण बार २ लोग उनको उपदेश देने के लिए प्रार्थना किया करते थे और कभी भी। तृप्त न होते थे। आजकल के किन्हीं २ व्याख्यान-दाताओं के व्याख्यान से तो ऐसा अजीर्ण होता है कि कभी २ तो घबराहट के मारे दीवार फाँद कर भागना पड़ता है। पर स्वामीजी के व्याख्यान में तो निरी अमृत-वर्षा होती थी। हम पाठकों के निदर्शन के लिए उनके धर्म-महोत्सव में दिए हुए व्याख्यान का कुछ अंश नीचे उद्धृत करते हैं।

स्वामीजी कहते हैं:—

"प्रेम शब्द भी कैसा प्यारा है? कहावत है कि प्रत्येक शरीर का एक प्रेमी होना चाहिए। सच्चे हिन्दू को केवल प्रेम (भक्ति) की ही इच्छा होती है। कुछ ऐसी पवित्र आत्मायें होती हैं जो प्रसन्नतापूर्वक अपना सब कुछ केवल पवित्र प्रेम के निमित्त त्याग देती हैं। हमको उस प्रेम के मूल को ढूँढ़ने की चेष्टा करनी चाहिए"। इसके

आगे उन्होंने चैतन्य महाप्रभु आदि की भक्ति का उल्लेख करते हुए कहा :—

"सच्चे प्रेम में मनुष्य अपने आपको भूल जाता है। उसको किसी बात की लज्जा नहीं रहती है। उसे दुनियाँ का कुछ ज्ञान नहीं होता और छोटे से ममत्व के बन्धन से भी छुटकारा पा जाता है। वह प्रेम ही धर्म है।"

इस व्याख्यान में एक स्थान पर स्वामीजी ने कहा था कि वेदान्त का उद्देश्य दुनियाँ के दुःख, सुख, मोह आदि से विमुक्त कराना है। वेदान्त की शिक्षा ग्रहण कर लेने पर मनुष्य शोक, मोह, भय और चिन्ता से विमुक्त हो जाता है। धर्म का उद्देश्य है कि मनुष्य के चरित्र में अटल बल प्राप्त हो।' स्वामीजी के अन्तिम भाषण में भी बड़े निर्भीक विचार थे। भारतवर्ष की परिस्थिति के सम्बन्ध में उन्होंने कहा था:—"कल मैं भारत-धर्म महामण्डल के प्लेटफ़ार्म पर इस विषय पर व्याख्यान दूँगा, चाहे कलेक्टर साहब भी उसको सुनने आएँ। सच्ची, खरी और सही बातें कहूँगा।"

साधारण धर्म-सभा की स्थापना

इसी 'धर्म महोत्सव' में एक साधारण धर्म-सभा के स्थापन करने का निश्चय हुआ था। इसके उद्देश्य स्वामीजी

महाराज ने ही बनाये थे। उन उद्देश्यों से पता चलता है कि स्वामीजी धर्म सम्बन्धी राग-द्वेष मिटाने के लिए बड़े इच्छुक थे। साधारण धर्म के उन्होंने निम्नलिखित ६ उद्देश्य निश्चय किये थे:—

(१) सच्चे वेदान्त की शिक्षाओं का प्रचार करना।

(२) वर्तमान समय की आवश्यकतानुसार विज्ञान की वृद्धि करना।

(३) भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न मतों की एकता स्थापन करना।

(४) सब सम्प्रदायों में परस्पर प्रेमभाव स्थापित करना।

(५) प्रत्येक साधारण धर्मानुयायी को शारीरिक व्यायाम के लिए उपदेश देना और छात्रों को सहायता पहुँचाना।

(६) इस धर्म में सब धर्मावलम्बी शामिल हो सकते थे। इसका उद्देश्य कोई अलग धर्म स्थापित करना नहीं था। किन्तु सब धर्मों के लोगों में अपने-अपने धर्मों में रहते हुए प्रेम-भाव का संचार करना था।

स्वामीजी का विचार इस सभा के स्थापन से कोई स्वतन्त्र पन्थ क़ायम करना नहीं था। वे पन्थों के झगड़ों को नापसन्द करते थे। उनकी हार्दिक इच्छा यही थी कि

सब धर्मों के लोग प्रेम के उपासक बनें। परन्तु दुःख है कि यह सभा चल नहीं सकी।

विदेशों में पर्यटन

हिमालय के पर्वतों में कुछ समय तपस्या करके, मथुरा के धर्म-महोत्सव के पश्चात् हमारे पूज्य स्वामीजी ने विदेशों में यात्रा करने का निश्चय किया। अपने निश्चय के अनुसार इन्होंने सन् १९०२ में मिश्र, जापान और अमेरिका में भ्रमण किया। इन देशों में लगभग ३ वर्ष तक स्वामीजी ने निवास किया। ये वहाँ भी वेदान्त शास्त्र के ज्ञान का प्रकाश फैलाने के लिए ही गए थे। उन देशों में भी लोगों ने इनका बड़ा आदर किया। इनके उपदेश बड़े प्रभावशाली होते थे। यद्यपि ये जन्म से हिन्दुस्तानी थे परन्तु सब देशों में इनका एक-सा आदर हुआ क्योंकि संन्यासी होने के कारण ये सभी जातियों तथा सभी धर्मों और देशों के लिए एक जैसे थे। किसी धर्म या जाति का पक्ष तो इन्हें था ही नहीं। स्वामीजी महाराज अपने को राम बादशाह कहा करते थे। राम बादशाह जिस जगह पहुँचते थे वहीं के लोगों को अपना भक्त बना लेते थे। मिश्र देश में मुसलमानों ने उनका बड़े प्रेम से स्वागत किया और इनसे व्याख्यान देने के लिये अनुरोध किया। स्वामीजी ने फ़ारसी भाषा में

वहाँ की एक मस्जिद में व्याख्यान दिया। इस व्याख्यान का प्रभाव मुसल्मानों पर खूब पड़ा। यदि उनके कुछ ऐसे व्याख्यान इस देश में होते तो आज यह हिन्दू मुसलमानों का वैमनस्य न रहता। परन्तु भारत के ऐसे भाग्य कहाँ ?

जापान में प्रचार

मिश्र देश से स्वामी रामतीर्थजी जापान पहुँचे। स्वामीजी में यह एक विशेषता थी कि ये जहाँ पहुँचते थे, वहाँ उन्हीं लोगों के हो जाते थे। जापानी उन्हें जापानी समझते थे, अमेरिकन उन्हें अमेरिकन समझते थे, मुसल्मान लोग उन्हें मुसल्मान ही समझने लगते थे। जापानियों ने भी उनका हृदय से स्वागत किया। टोकियो की सरकारी यूनिवर्सिटी के संस्कृत प्रोफेसर टाकू कुत्सू (Taku Kutsu) ने इनके सम्बन्ध में कहा था—"केवल यही एक दर्शन-शास्त्र के सच्चे विद्वान् देखे गये हैं।"

जापान ने जो स्वल्प समय में विचित्र उन्नति की है, इस सम्बन्ध में स्वामीजी अपने व्याख्यानों और लेखों में जापान के लोगों की बड़ी प्रशंसा किया करते थे। भारतवासियों से वे अपने व्याख्यानों में यही कहा करते थे कि वे देश-भक्ति का पाठ जापान से पढ़ें। यद्यपि

स्वामी रामतीर्थजी जापान की सदा तारीफ़ किया करते थे परन्तु उन्होंने जो 'जापान की सफलता के रहस्य' पर व्याख्यान दिया था, उसमें जापानियों से साफ़ कह दिया था:—एक रसायन-शाला का मज़दूर रसायन-विद्या का पण्डित नहीं कहला सकता क्योंकि वह केवल क्रिया करना ही जानता है, वैसे ज्ञान-शून्य होता है। इसी भाँति कुछ बातें जान लेने से कोई देश सब बातों का ज्ञाता नहीं कहला सकता। जापान में जो यह व्याख्यान स्वामीजी ने दिया था उसको हम नीचे देते हैं, जिससे पाठक जान सकेंगे कि स्वामीजी महाराज कैसे स्पष्ट वक्ता थे।

स्वामीजी अपने 'Secret of Success' (सफलता का रहस्य) व्याख्यान में जापानी भाइयों से कहते हैं:—

"प्यारे भाइयो !

क्या यह विलक्षण बात नहीं कि जिस विषय का जापान ने उपयोग किया है, उसी विषय पर एक भारत-वासी यहाँ आकर व्याख्यान दे, तथापि कई कारणों से मैं आपके सामने शिक्षक के रूप में खड़ा हुआ हूँ।

किसी विचार को बुद्धिमानी के साथ कार्य में परिणत करना और बात है और उस विचार के मूल तत्त्वों को जान लेना और बात है। कुछ सामान्य उद्देश्य को रखकर कार्य करने से एक आध राष्ट्र का उद्धार होता दिखाई देता है परन्तु

राष्ट्रीय हृदय ने उन तत्वों को अच्छी तरह से नहीं समझ लिया है तो उस राष्ट्र का अपने स्थान से गिर जाने का बहुत कुछ भय है। एक मज़दूर तो अच्छी तरह रसायन क्रिया कर लेता है परन्तु केवल क्रिया-कुशल होने से वह रसायन शास्त्र का पण्डित नहीं समझा जा सकता। क्योंकि क्रिया करने लेने पर भी उसे उसका वास्तविक ज्ञान नहीं। वह केवल शारीरिक श्रम कर सकता है। मस्तिष्क उसका रसायन के रहस्य से शून्य ही रहता है। इसी प्रकार इञ्जन चलानेवाला फ़ायरमैन इञ्जीनियर नहीं हो जाता है। केवल अच्छी तरह इञ्जन चला लेना अथवा यन्त्रों से परिचित होना ही इञ्जीनियर नहीं बना देता है। आपने यह बात पढ़ी होगी कि एक डाक्टर घाव पर पट्टी बाँधकर नित्य एक तलवार से उसे छुला कर सात दिन में उस घाव को आराम करा देता है। घाव के चंगे होने का कारण यही था कि वह डाक्टर घाव पर पट्टी बाँध देता था, खुला नहीं रहने देता था। परन्तु वह यही समझे हुए था कि तलवार के स्पर्श से ही घाव को आराम हो जाता है और रोगी भी यही समझे हुए थे। इसका परिणाम क्या हुआ? परिणाम यह हुआ कि उस डाक्टर को इस भ्रांति के कारण उन रोगियों की चिकित्सा में विफलता

होने लगी, जिनके घावों में पट्टी बाँधने के सिवाय और भी कुछ औषध की आवश्यकता थी। इसलिए यह आवश्यक है कि यथार्थ क्रिया और यथार्थ उपदेश साथ २ हों। दूसरे मैं जापान को अपना देश और जापानियों को देशवासी जैसा समझता हूँ। मैं यह सिद्ध कर सकता हूँ कि आपके पूर्वज, प्रारम्भ में भारतवासी थे; फिर यहाँ आये थे। तुम्हारे पूर्वज मेरे भी पूर्वज थे। मैं तुम से भाई के नाते से मिलने आया हूँ न कि एक परदेशी यात्री की तरह। दूसरे प्रमाण से भी मुझे तुम्हारे उपदेशक बनने का अधिकार है। मैं जन्म से भारतीय हूँ परन्तु स्वभाव आचरण और चित्त-वृत्ति से जापानी हूँ। अस्तु अब मैं अपनी भूमिका को समाप्त करके मुख्य विषय की ओर आता हूँ।

सफलता का रहस्य गुप्त नहीं है। उसे प्रायः सभी जानते हैं। प्रत्येक व्यक्ति इस विषय पर कुछ न कुछ बोल सकता है और शायद आप लोग इसके साधारण सिद्धान्त सुन भी चुके होंगे। परन्तु यह विषय इतना आवश्यक है कि सर्व साधारण के हृदय-पटल पर इस विषय को अङ्कित करने के लिए जितना कहा जाय उतना ही थोड़ा है।

सबसे पहले प्रकृति से यही प्रश्न करो कि पानी के बहते हुए झरने के समान पुस्तकें और ये शिला रूपी उपदेश हमें यही सिखाते हैं कि निरन्तर उद्योग करते रहो। प्रकाश हमको देखने की शक्ति देता है। सब जीवों में चैतन्य का सञ्चार करता है। अच्छा, हमको देखना चाहिये कि यह प्रकाश क्या वस्तु है ? मैं इसके लिए आपको इस मामूली प्रकाश अर्थात् लेम्प का ही उदाहरण देता हूँ। लेम्प के उजलेपन और चमक में यही रहस्य है कि वह अपना तेल और बत्ती अच्छी तरह से खर्च करता है। तेल बत्ती अर्थात् क्षुद्र अहंकार जल रहा है इसलिये उसका स्वाभाविक परिणाम तेज है। लेम्प आपको यह उपदेश देता है कि जहाँ आपने उद्योग से जी चुराया वहाँ आपका जीवन दीप बुझा। यदि आप अपने शरीर को तुच्छ सुख देने के लिए भोग विलास में फँस गये, यदि अब आप विषय-वासनाओं में फँस कर अपने समय का दुरुपयोग करने लगे, तो आपके जीवन की कोई आशा नहीं है। दूसरे शब्दों में इसका यह मतलब है कि आलस्य आपके लिए मृत्यु है और केवल उद्योग ही आपका जीवन है।

किसी बँधे हुए पानी के गढ़े को देखिये और बहती हुई नदी को देखिये। बहती हुई नदी और बँधे हुए पानी में यही भेद है कि बहती हुई नदी का पानी स्वच्छ, सफ़ेद, ताज़ा, पीने योग्य और सुन्दर मालूम होता है। लेकिन गढ़े का पानी गन्दा दुर्गन्धि-युक्त सड़ा हुआ और मन में घृणा पैदा करनेवाला होता है यदि सफलता को प्राप्त करना चाहते हैं, तो नदी के बहते हुए पानी के समान उद्योग को अपनाइयेगा। इस संसार में ऐसे मनुष्यों के लिये कोई आशा नहीं है जो अपने तेल और बत्ती को केवल इस कारण से बचा रखते हैं कि वह ख़र्च न हो जाय। नदी की नीति का अवलम्बन करो। सदैव उन्नति करते रहना, दूसरों को अपने में मिला लेना तथा अपने को दूसरों में मिला लेना, परिस्थिति के अनुसार सदा चलते रहना, और सदा उद्योग करते रहना, यही नदी की नीति है। उद्योग! उद्योग! निरन्तर उद्योग करते रहना ही सफलता का प्रथम उपाय है·····यदि आप इस उपाय का अवलम्बन करेंगे तो आप को यह मालूम हो जायगा कि जितनी सहज अवनति है उतनी ही सहज उन्नति भी है।

दूसरा साधन (स्वार्थ-त्याग)

हर एक मनुष्य सफेद वस्तु को पसन्द करता है।

हमको देखना चाहिये कि सफेद रंग सबको अच्छा क्यों लगता है। काली वस्तु से सब लोग भौं सिकोड़ते हैं। इस बात को देख कर श्वेत रंग की सफलता का कारण ढूँढ़ना चाहिये। पदार्थ विज्ञान (Physics) हम को रंग दिखलाई पड़ने के कारण बतलाता है। लाल रंग लाल नहीं होता, हरा रंग हरा नहीं होता, काला रंग काला नहीं होता, जो कुछ दिखलाई देता है वस्तुतः वह नहीं है। गुलाब का पुष्प अपना लाल रंग छोड़ देने से और भी प्यारा मालूम होने लगता है। सूरज की किरणों के अन्य-अन्य रंगों को यदि वह गुलाब खींच ले तो कोई नहीं कह सकता कि उसमें वे रंग आ गये। पेड़ का हरा पत्ता प्रकाश से और सब रंगों को खींच कर जिस अपने हरे रंग को छोड़ देता है, उसी हरे रंग से वह हरा और सरसब्ज़ बना रहता है। काली वस्तु में यह प्राकृतिक बात है कि वह और पदार्थों के रंगों को खींच लेती है परन्तु अपना रंग नहीं छोड़ती। उसमें त्याग और दान-धर्म का लेश भी नहीं है। वह ज़रा-सी भी किरण त्याग, बल्कि दूसरों से जो ले लेती है उसे भी वापस, नहीं करती। उसका यह स्वभाव हमें शिक्षा देता है कि जो मनुष्य अपनी आमदनी में से अपने भाई और पड़ोसियों को कुछ भी न दे उसे कोयले से भी काला समझना चाहिये।

दान देना ही आमदनी का फल है। सफेद् पदार्थों की सफलता का कारण उनका त्याग और जो कुछ मिले सो दूसरों को समर्पण कर देना ही है। इसलिये श्वेताङ्गों से शिक्षा लीजिये। श्वेताङ्गों से आप युरोप के रहनेवाले मनुष्य न समझें किन्तु सफेद् शीशा, सफेद् मोती, सफेद् बन-कबूतर और सफेद् बर्फ़। ये सब शुद्धता और साधुता के चिन्ह हैं। इसलिये इनसे स्वार्थत्याग की शिक्षा ग्रहण करिये और जो कुछ मिले उसे दूसरों को दीजिये। स्वार्थभाव से किसी वस्तु को ग्रहण करना छोड़ देंगे तब आप भी श्वेत हो जायँगे। एक बीज को वृक्ष में परिणत होने के लिये अपने आप को त्याग करना पड़ा उसीके परिणाम में फल प्राप्ति होती है। मैं समझता हूँ कि सब अध्यापक मेरे इस कथन से सहमत होंगे कि जितना ज्ञान हम दूसरों को देंगे उतना ही वह बढ़ेगा।

तीसरा साधन (अभिमान-त्याग)

विद्यार्थी यह भली भाँति जानते हैं कि जब वे साहित्य सभाओं में व्याख्यान देने के लिये खड़े होते हैं तब "मैं व्याख्यान दाता हूँ" यह विचार उनके चित्त में पैदा होता है। बस, इस विचार के पैदा होते ही सारा व्याख्यान मिट्टी में मिल गया। काम करते समय आप 'मैं' को भूल जाइयेगा और जुट जाइयेगा, आप अवश्य

सफल होंगे। यदि आप कुछ विचारते हैं तो विचार में ही मग्न हो जाइयेगा, आप उस विचार में सफल होंगे। यदि आप उद्योग करते हैं, तो उद्योग में मिल जाइयेगा। बस यही सफलता का सीधा रास्ता है।

यहाँ पर मुझे दो राजपूतों की कथा याद आती है। वे भारतवर्ष के मुग़ल सम्राट् अकबर के यहाँ नौकरी के लिए गये थे। अकबर ने उनसे उनकी योग्यता के बाबत पूछा। उन्होंने कहा "हम योद्धा हैं"। अकबर ने प्रमाण माँगा। इस पर दोनों तलवार निकाल कर खड़े हो गये। अकबर के दरबार में दोनों की तलवारें बिजली के समान चमकनेलगी। तलवारों की जगमगाहट ही उनकी वीरता का अच्छा प्रमाण था। क्षण भर में ही बिजली के समान चमकनेवाली तलवारें एक दूसरे के शरीर से भिड़ गईं। थोड़ी देर में दोनों भूमि माता की गोद में लेट गये और अपनी वीरता का प्रमाण दे गये। इससे शिक्षा लीजिये। शिक्षा यह है कि अपने उद्योग में क्षुद्र अहंकार को छोड़ें, फिर आप सफल होंगे।

चौथा साधन (सर्व-व्यापी प्रेम)।

प्रेम भी सफलता प्राप्त करने का एक अद्‍भुत साधन है। दूसरों से प्रेम करो और उनके प्रेमपात्र बनो, यही अन्तिम साधन है। यदि हाथ सजीव रहना चाहता

है, तो उसको चाहिये कि शरीर के सब अंगों से प्रेम करे। यदि वह सोचने लगे कि मेरी कमाई से सारा शरीर क्यों लाभ उठावे तो उस हाथ के सजीव रहने की कोई आशा नहीं। यदि स्वार्थ में ही फँसा रहे तो हाथ को चाहिये कि उसने जो कुछ अपनी लेखनी और तलवार के बल से भोजन की सामग्री पाई हो उसे अपने में (हाथ में) ही भर ले और अन्य अवयवों को न दे। ऐसा करने से हाथ ऐसा मोटा हो जायगा जैसे कि मधु मक्खी के काटने से फूल जाता है, परंतु लाभ कुछ न होगा प्रत्युत पीड़ा होगी। ऐसा स्वार्थी हाथ अवश्य सड़ कर मरेगा।

सहयोग से ही मनुष्य सफलता पा सकता है। एक व्यापारी जो अपने ग्राहक के स्वार्थ का ध्यान नहीं रखता है, कभी सफल नहीं हो सकता यदि वह अपनी उन्नति चाहता है, तो प्रेम करे और हृदय से उनके हित की चिन्ता करे।

पाँचवाँ साधन (प्रसन्नता)

सफलता का एक अत्युत्तम साधन प्रसन्नता भी है। आप जन्म से प्रसन्न हैं। मुझे आपकी प्रसन्नता देख कर आनन्द आता है। बस मैं यही चाहता हूँ कि आप अपने जीवन की इस विशेषता को अन्त समय तक ऐसी ही

रखयेगा। अब हमको यह सोचना चाहिये कि हम इस प्रसन्नता को अन्त समय तक कैसे स्थिर रख सकते हैं।

उद्योग करते हुए अपने उद्योग के फल की चिन्ता मत करो। भविष्य की मत सोचो। किसी बात की चिन्ता मत करो। सफलता और विफलता का विचार मत करो। कर्म कर्म के लिये करो। कर्म करना ही कर्म का मुख्य फल है। बीती हुई बातों को भुला दो। उद्योग करो, सारी अवस्थाओं में यह भाव आपको प्रसन्न रक्खेगा। भविष्य की चिन्ता छोड़ कर जो प्रकाश (ज्ञान) आपके पास है उसका सदुपयोग करिये। यदि आपको अँधेरी रात्रि में बीस गज की दूरी पर जाना है और आपके हाथ में जो दीया है उसका प्रकाश दस कदम तक ही जाता है, तो इस बात की चिन्ता मत करो कि अँधेरा सारे रास्ते में है और प्रकाश थोड़ी दूर में है। किन्तु जहाँ तक प्रकाश है, वहाँ तक बेखटके चले जाइये। आपके आगे आगे प्रकाश जायेगा और अंधेरा दूर होता जायगा। जो मनुष्य तैराक नहीं है और अचानक किसी झील में गिर पड़ते हैं, वे भी यदि धैर्य्य से अपने शरीर का वज़न बराबर करके खड़े रहते हैं तो डूबने से बच जाते हैं। क्योंकि मनुष्य का विशिष्ट गुरुत्व (Specific gravity) पानी से कम होने के कारण वह पानी पर अपने आप ही

तैरता रहता है। परन्तु घबड़ाने वाले मनुष्य इधर-उधर अनुचित चेष्टा करने के कारण डूब जाते हैं। बस इसी प्रकार भविष्य सफलता की चिन्ता करते-करते मनुष्य को विफलता प्राप्त हो जाती है।

परछांही को पकड़ने के लिए उसके पीछे दौड़नेवाला मनुष्य कभी सफल नहीं हो सकता। इसी तरह यश और सफलता की चिन्ता में रहनेवाला मनुष्य कभी नहीं सफल हो सकता। आप परछांही को पीठ देकर दौड़िए, वह आपके पीछे पीछे दौड़ी चली आयेगी। इसी प्रकार आप कर्मों के फल की उपेक्षा करके कर्म कीजिये, फल अवश्य होगा।

मैजिस्ट्रेट को न्याय के लिए किसी वादी प्रतिवादी चपरासी या अर्दली को बुलाने की आवश्यकता नहीं। उसे चाहिए कि न्यायालय के आसन पर जा बैठे। वकील, मुद्दई मुद्दायला, चपरासी, पेशकार सब पीछे पीछे हजूर हजूर करते दौड़ आयेंगे। सो मेरे प्यारे मित्रो! जो कार्य आप को करना है प्रसन्न हो कर कीजिए, सफलता आपके सामने हाथ जोड़े खड़ी रहेगी।

छठा साधन (निर्भीकता)

इसके अनन्तर जो कुछ मैं आपको बतलाना चाहता हूँ, वह आप अपने अनुभव से ही जान सकते हैं। यह

छठा साधन निर्भीकता (निडरपन) है। केवल एक मात्र निर्भीकता से मनुष्य विजयी हो सकता है। मैं हिमालय के जंगलों में घूमा हूँ। मैंने बहुत से शेर, भालू, भेड़िये आदि जंगली जानवर देखे हैं परन्तु उन्होंने मुझे कभी कुछ हानि नहीं पहुँचाई। जंगली जानवर मेरे सामने आ गए उनकी मेरी चार आँखें हुईं। वे भयानक जंगली जानवर स्वयं ही डर कर भाग गए। यह निर्भीकता की विशेषता है।

आपने देखा होगा कि कबूतर बिल्ली के सामने अपनी आँखें बन्द कर बैठता है। वह भय से बिल्ली की तरफ़ नहीं देख सकता और अपनी आँखें बन्द कर लेने से वह समझता है कि बिल्ली भी उसे नहीं देखती। इसका नतीजा यह होता है कि बिल्ली कबूतर को खा जाती है। निर्भीक मनुष्य के आगे शेर भी सीधा हो जाता है, पर डरपोक को बिल्ली भी झपट लेती है।

आपने देखा होगा कि जिसका हाथ काँपता है, वह एक बर्तन से दूसरे बर्तन में कोई चीज़ नहीं डाल सकता और डालता है तो गिरा देता है। पर जो हाथ निडर होकर चीज़ को दूसरे बर्तन में डालेगा उससे एक बूँद भी जमीन पर नहीं गिरेगी। यहाँ पर भी प्रकृति आपको मूक व्याख्यानों से निर्भीकता का उपदेश दे रही है।

एक समय एक पंजाबी सिपाही जहाज़ पर किसी असाध्य संक्रामक (छुतिहा) बीमारी से बीमार होगया। जहाज़ के डाक्टर ने उसे रुग्णावस्था में ही समुद्र में फेंक देने का शाही आर्डर निकाल दिया। सिपाही ने जब यह हुक्म सुना तो एक दम जोश में आगया। जब मनुष्य अपनी मृत्यु को देखता है तो उसमें निर्भीकता आ ही जाती है। सिपाही बिस्तरा छोड़ कर उठ खड़ा हुआ। सीधा डाक्टर के पास गया और उसके सामने पिस्तौल लगाकर कहने लगा :—"साहब, क्या मैं बीमार हूँ? क्या आप सचमुच ऐसा कहते हैं। मैं आपको अभी गोली से मार दूँगा"। डाक्टर ने उसी समय उसको स्वास्थ्य का प्रमाणपत्र दे दिया। निराशा निर्बलता की निशानी है, उसे छोड़ो। निर्भय होने से पूरी शक्ति पा सकते हो। मेरे इस निर्भीकता शब्द पर ध्यान दो। निर्भीक रहो।

सातवाँ साधन (स्वावलम्बन)

स्वावलम्बन भी सफलता का अन्तिम पर मुख्य साधन है। यदि मुझसे कोई कहे कि समस्त तत्त्वज्ञान मुझे एक शब्द में दे दो तो मैं कहूँगा कि 'स्वावलम्बन' ही आत्मज्ञान है।

हे मनुष्यो! सुनो तुम अपने आपको पहचानो।

यह अक्षरशः सत्य है कि परमेश्वर उन्हींकी सहायता करता है जो अपनी सहायता अपने आप करते हैं (God helps those who help themselves)। यह सिद्ध किया जा सकता है कि परमात्मा आपको सहायता देने के लिए हर समय तैयार है। आप यह अनुभव कर सकते हैं कि आपका आत्मा ही परमेश्वर है। वही सर्व-व्यापी और सर्वशक्तिमान् है। यह तत्व है। सत्य है। इसकी सत्यता अनुभव से जानी जा सकती है। आप अपने ऊपर निर्भर रहें, आप सब कुछ प्राप्त कर सकते हैं। आपके लिए कुछ असम्भव नहीं।······एक दो भाइयों की कहानी प्रसिद्ध है। इन दोनों भाइयों को बराबर की सम्पत्ति मिली थी, पर एक कुछ समय बाद कंगाल हो गया और एक लखपती हो गया। इस पर लखपती भाई से किसीने पूछा कि यह क्या कारण है? उसने उत्तर में कहा कि मेरा भाई हमेशा जाओ जाओ कहा कहा करता था और मैं आओ आओ कहा करता था। मतलब यह कि इसने सदा नौकरों पर हकूमत की, स्वयं गद्दी पर पड़ा रहता था। सब काम नौकरों के भरोसे छोड़ा और मैंने सब कार्य स्वयं किया। मेरे स्वावलम्बन ने मुझे लखपती बना दिया और उसके आलस्य ने उसको कंगाल बना दिया। इसलिए प्यारे भाइयो आलस्य को छोड़ो और स्वावलम्बी बनो।

स्वामीजी के व्याख्यान बहुत लम्बे और सारगर्भित होते थे। इनके व्याख्यानों को पूर्णरूप में देना इस छोटी-सी पुस्तिका में असंभव है। हमने यथा-शक्य संक्षेप किया है। इनके व्याख्यानों को यदि असली रूप में देखना हो तो हम योग्य पाठकों को सलाह देते हैं कि वे अँग्रेज़ी की पुस्तक (Speeches of Swami Ram Tirtha) देखें जिसमें इनके पूरे व्याख्यानों का संग्रह है।

अमेरिका में भ्रमण और उपदेश

अब स्वामी रामतीर्थजी ने अमेरिका यात्रा का निश्चय किया। इन्होंने जो जापान में प्रभावोत्पादक व्याख्यान दिये थे उनकी धूम अमेरिका में पहले से ही अखबारों द्वारा मच रही थी। स्वामीजी साक्षात् त्याग की मूर्ति थे। अपने दैनिक खर्च के लिए भी इन्होंने कभी रुपये पैसे की चिन्ता नहीं की। ये सच्चे साधु थे। इनको ऐसी चिन्ताओं से क्या मतलब? ये कहा करते थे कि राम बादशाह की सारी दुनियाँ है और सारी दुनियाँ का राम बादशाह है। वे प्रायः कहा करते थेः—

बादशाह दुनियाँ के हैं मुहरे मेरी शतरंज के,
दिल्लगी की चाल है सब रंग सुलह ओ जंग के।

वस्तुतः स्वामीजी महाराज का यह कथन यथार्थ था। जिस समय ये जापान से अमेरिका रवाना हुए उस

समय इनके पास रुपया पैसा कुछ न था। उसी जहाज़ में एक अमेरिका के पत्र का संवाददाता भी बैठा था। इस संवाददाता ने स्वामीजी के गेरुआ वस्त्र देख कर इन्हें कोई साधारण व्यक्ति समझा। वहाँ इन दोनों में कुछ परस्पर वार्तालाप भी हुआ जो बहुत ही मनोरञ्जक था। उसका सारांश हम नीचे देते हैं:—

संवाददाता—'आप कहाँ जाते हैं।'

स्वामीजी—'मैं अमेरिका जाता हूँ।'

संवाददाता—'क्या इसी लिबास में आप अमेरिका जा रहे हैं।'

स्वामीजी—'हाँ, इसी लिबास में अमेरिका जा रहा हूँ।'

संवाददाता—'आपके पास कितना रुपया है ?'

स्वामीजी—'राम अपने पास रुपया पैसा कुछ नहीं रखता।'

संवाददाता—'अच्छा, आप वहाँ कहाँ ठहरेंगे ?'

स्वामीजी—'मुझे कुछ मालूम नहीं, मैं वहाँ कहाँ ठहरूँगा।'

इस पर संवाददाता ने झुँझला कर कहा—तुम भी अजीब मनुष्य हो, अमेरिका जैसे देश में जा रहे हो। न वहाँ पर ठहरने का प्रबन्ध किया है, न अपने साथ कुछ रुपया

पैसा ही ले चले हो, वहाँ पर तुमको भूखों तो नहीं मरना ? इस पर स्वामी राम खिलखिला कर हँस उठे और बोले–'राम सारी दुनियाँ का है और सारी दुनियाँ उसकी है, राम को अमेरिका में तो क्या, कहीं भी भूखे मरने की नौबत न आवेगी।' रामकी यह बात सुन कर संवाददाता चौंके और पूछने लगे—'आप वही स्वामी राम तो नहीं हैं, जिनके व्याख्यानों को जापान के अख़बारों से मैं अमेरिका के अख़बारों के लिये नकल करता रहा हूँ।

स्वामी जी ने उत्तर दिया—'हाँ मैं वही राम हूँ'। यह सुनने पर संवाददाता ने अमेरिका आने की सूचना अमेरिका के समाचार-पत्रों को तार द्वारा भेज दी। ६ दिन की समुद्र यात्रा पूरी करके राम बादशाह अमेरिका पहुँचे। वहाँ पर बहुत से लोग घोड़ा गाड़ियों के साथ इनके स्वागत के लिये खड़े थे। राम ने इस समय पर अख़बार के संवाददाता से मुस्करा कर पूछा—'क्यों साहब, अब भी मुझे भूखे मरना पड़ेगा।' संवाददाता बहुत लज्जित हुआ।

अमेरिका में स्वामी राम के व्याख्यानों ने बड़ा प्रभाव पैदा किया। वहाँ के लोग इनके व्याख्यान सुनने को इतने उत्सुक रहते थे कि इनको एक २ दिन में छः २ दफ़ा व्याख्यान देना पड़ता था। राम ने वहाँ

आध्यात्मिक शक्ति हो नहीं दिखलाई किन्तु अपने शारीरिक बल से भी लोगों को चकित कर दिया। ये वहाँ के सिपाहियों के साथ तीन-तीन मील तक दौड़ते चले जाते थे और उनसे आगे निकल जाते थे। ये बीस-बीस मील तक तैरते चले जाते थे।

अमेरिका के लोग इन पर बड़े मोहित हो गये थे। पार्टलैण्ड राम-सोसायटी के सभापति और वहाँ के जज मिस्टर वेन्सटर ने एक बार इनकी बाबत कहा था—'जब जब प्रथम बार ही मैं राम से मिला और वार्तालाप भी नहीं करने पाया था, उसी समय मेरा इनसे प्रेम होगया, जैसा और किसी को देखने से आज तक नहीं हुआ है। इस प्रेम का फल सदैव रहेगा। इसी प्रकार अमेरिका की मिसेज़ वेलमेन की स्वामीजी में बड़ी भक्ति और श्रद्धा हो गई थी। यहाँ तक कि यह स्वामी जी महाराज के दर्शन करने के प्रयोजन से एक बार भारतवर्ष में भी आई। बूढ़ी होने पर भी जंगलों में उनके पीछे पीछे फिरा करती। भारत में आकर इसने लाहोर अमृतसर, गुजरानवाला आदि राम की मातृभूमि पंजाब के नगरों को देखा। वह इनके गांव मरालीवाला भी गई। वहाँ के वृक्षों को भी देख कर अति प्रसन्न होती थी। राम के बच्चों तथा धर्मपत्नी को बड़े आदर की

दृष्टि से देखती थी। सारांश यह है राम बहुत से अमेरीका-वासी लोगों के तो आराध्य देव बन गए थे।

राम ने अमेरिका में बहुत से व्याख्यान दिए थे। उनका विषय निर्देश भी यहां करना कठिन है। यदि एक व्याख्यान का अनुवाद भी हिन्दी भाषा में दिया जावे तो मुश्किल से सारी पुस्तिका में एक व्याख्यान आवे। तथापि हम पाठकों के विनोद के लिए २-३ व्याख्यानों का कुछ कुछ हिस्सा उद्धृत करेंगे। पीछे जापान में दिए हुए 'सफलता का रहस्य' नामक व्याख्यान का कुछ अंश हम दे ही आए हैं। अब हम उनके अमेरिका में दिए हुए 'सफलता की कुञ्जी' शीर्षक वाले व्याख्यान का कुछ अंश देंगे।

सफलता को कुंजी

यह व्याख्यान स्वामी जी ने सेन्ट फ्रांसिस्को में दिया था जिस का सारांश इस प्रकार है:—

'तीन लड़कों को पांच सेन्ट दिए। लड़कों के मालिक ने रुपये को आपस में बराबर बाँटने के लिए कह दिया था। लड़कों ने उस रुपये से कुछ चीज़ खरीदने के लिये सोची। इन लड़कों में से एक हिन्दू था एक अँगरेज था और एक पारस देश का रहनेवाला मुसलमान था। तीनों की भाषाएें अलग अलग थीं।

एक दूसरे की बोली नहीं समझ पाता था। इसलिए कुछ निर्णय न हो सका कि क्या खरीदना चाहिए। तीनों अपनी अपनी भाषा में तरबूज खरीदना चाहते थे। परन्तु एक दूसरे की भाषा न समझने के कारण तीनों में बड़ा झगड़ा हो गया। तीनों अपनी अपनी चीज खरीदने के लिए अनुरोध करने लगे। इतने में एक ऐसा मनुष्य आ गया जो तीनों की भाषायें समझता था। इस मनुष्य ने इनके झगड़े को निपटाने का बीड़ा उठाया। लड़कों ने इसके न्याय को मानना स्वीकार किया। अन्त में इस मनुष्य ने लड़कों से सेन्ट (एक अमेरिकन सिक्का) ले लिया और स्वयं इनके लिये चीज खरीदने बाज़ार गया। बाजार में इस ने एक तरबूज ख़रीदा और लड़कों के पास पहुँचा। लड़कों से कह दिया कि उनमें से एक-एक बारी-बारी से उसके पास आवे। इस तरह सबसे पहले अंगरेज़ लड़के को बुलाया और उससे धीरे से कहा 'तुम यही चीज़ चाहते थे न'। वह बोला, 'हाँ' और तरबूज पाकर मन में बड़ा प्रसन्न हुआ और मन में समझने लगा कि उसी की वाञ्छित चीज़ ख़रीदी गई। इसी प्रकार उसने हिन्दू के लड़के को बुलाया और उससे भी वही प्रश्न करके तरबूज

का टुकड़ा हाथ में पकड़ा दिया। वह भी बड़ा प्रसन्न हुआ और अँगरेज़ लड़के की तरह समझने लगा कि उसीकी इच्छा के अनुसार चीज़ ख़रीदी गई है। इसी प्रकार तीसरा पारस देश-वासी मुसलमान लड़का भी प्रसन्न हो गया।

अच्छा, अब सोचिये कि जब एक ही चीज़ ये तीनों चाहते थे तो इनमें झगड़ा क्यों हुआ। विचार करने से मालूम होगा कि केवल भाषा भेद से इनमें इतना झगड़ा हुआ। तीनों भाषाओं में तीन भिन्न-भिन्न नाम थे। नाम भेद हटा दो झगड़ा मिट गया। तरबूज, water melon और हिन्दवाला ये तीनों एक ही चीज़ के नाम हैं। इसी प्रकार राम को धर्म-सम्बन्धी मत-भेद को देख कर अचरज होता है। क्रिश्चियन लोग यहूदियों से लड़ रहे हैं, यहूदी मुसल्मानों से झगड़ रहे हैं, मुसलमान ब्राह्मणों से लड़ रहे हैं। इस सब वैमनस्य का क्या कारण? नाम भेद। बस नाम भेद के पर्दे को हटा दीजिये। सब मतों का भीतरी रूप एक है।

राम प्रायः वेदान्त शब्द का प्रयोग किया करता है, बस इसीसे बहुत से लोगों को राम की बातें अच्छी नहीं लगतीं। एक आदमी आता है और बुद्ध के नाम पर कुछ उपदेश करता है। बस बहुत से मनुष्य बुद्ध का नाम

सुनने से ही उपदेशक के द्वेषी हो जायँगे, क्योंकि यह नाम उनके कानों को नहीं भाता। सज्जनो! कुछ और भी विचारो। केवल नाम सुनकर ही किसी चीज़ की बुराई भलाई का फैसला मत दो।

यह व्याख्यान स्वामीजी का बहुत बड़ा है हमने केवल यह दिखलाया है कि स्वामीजी महाराज धार्मिक-भेद-भावों को बहुत नापसन्द किया करते थे।

सच्चे सुख का स्थान

सब लोग सुख की खोज में व्यग्र हैं, परन्तु पहले हमको यह देखना चाहिए कि सुख रहता कहाँ है। क्या सुख का स्थान राजाओं के महल हैं? नहीं। क्या यह स्त्री की सुन्दरता में रहता है या काञ्चन में? नहीं। सुख की कहानी निराली है। जैसे समय की गति बदलती रहती है वैसे ही सुख का स्थान भी बदलता रहता है। एक नव-जात बालक के लिए माता की गोद ही सच्चे सुख का स्थान है। परन्तु जैसे यह बालक १२ महीने का हुआ वैसे ही सुख का स्थान बदला। प्यारी माता से भी वह कभी २ अब अपने खिलौने के लिए झगड़ता है। जब बालक ज़रा समझदार ६-७ वर्ष का होता है तो उसे चित्रमय कहानी की पुस्तक में सुख दिखाई देता है। जब कालेज में जाता है तो विज्ञान और शास्त्र में सुख

प्रतीत होता है। कालेज से निकलने पर रोजगार और स्त्री में सुख मालूम होता है। विवाह के थोड़े समय बाद उसे पुत्र का दर्शन करने में सुख जान पड़ता है। अब हमको विचार करना है कि क्या वास्तव में सुख माता की गोद में, खिलौने में, कांचन में, कामिनी में, पुत्र में, अथवा अन्य सांसारिक पदार्थों में निवास करता है। इस विषय में कुछ कहने से पहले हम सुख की तुलना चलायमान सूरज से करेंगे। सूरज का प्रकाश भी एक स्थान से दूसरे स्थान को जाता है। अभी थोड़ी देर में यह प्रकाश जो अब अमेरिका में है जापान में होगा फिर जापान से किसी और देश में होगा। परन्तु ये भिन्न २ स्थान प्रकाश के उत्पत्ति स्थान नहीं हैं, प्रकाश की तो उत्पत्ति और ही स्थान से होती है। इसी प्रकार आनन्द इन वस्तुओं में अवश्य है पर ये सब आनन्द की जन्म देनेवाली नहीं हैं। यहाँ हम आनन्द-स्रोत के निकट चले आते हैं। बालक पुत्र होने से स्नेह-पात्र नहीं होता किन्तु आत्मा के सम्बन्ध से ही सुखप्रद है। इसी प्रकार अपनी हित-कामना के लिए ही धन प्यारा है। इसलिए यह सिद्ध होता है कि सुख का स्थान अपने भीतर ही है। इस सम्बन्ध में एक बड़ी ही रोचक कहानी हिन्दुस्तान में प्रचलित है। एक स्त्री थी। उसकी सुई खो गई थी।

स्त्री निर्धनता के कारण घर में दीया नहीं जला सकती थी। एक पास की गली में रोशनी थी, उस रोशनी में जाकर सुई ढूँढ़ने लगी। सुई वहाँ कहाँ थी। वह तो घरमें खोई थी। बस यही हाल मनुष्यों का है कि वे ज्ञान दीपक न होने के कारण अपने अन्दर रहनेवाले सुख को संसार की बाहरी चीज़ों में देखते फिरते हैं।

हम पाठकों के सामने स्वामीजी के एक प्रसिद्ध व्याख्यान का थोड़ा सा अंश और रखना चाहते हैं। इस व्याख्यान का शीर्षक है 'अमेरिका-वासियों से अपील' "An appeal to Americans"। यह व्याख्यान जनवरी मास की १९ तारीख को सन् १९०३ में सेनफ्रान्सिसको के ग्लोडिन गेट में हुआ था। इस व्याख्यान को सुन कर, श्रोता कैसा भी कठोर-हृदय हो, रोमाञ्च हो जाता है। यदि इस व्याख्यान का पूरा अनुवाद दिया जाय तो एक सौ पृष्ठों की पुस्तक अलग ही बन जावे। परन्तु हम यहाँ पर इसके मुख्य २ अंशों का संक्षिप्त भावार्थ देते हैं।

व्याख्यान के प्रारम्भ में स्वामीजी ने भारत की प्राचीन विभूति का वर्णन किया था। आगे उन्होंने कहा था:—यूनान, अमेरिका, इंगलैण्ड, जर्मनी आदि सभ्यताभिमानी देशों के दार्शनिक विद्वानों ने पहले भारतवर्ष से

ही शिक्षाएँ ग्रहण की थीं। भारत केवल ऊँचे विचारों की ही भूमि नहीं है, किन्तु वह शारीरिक बल-शक्ति में भी बढ़ा चढ़ा है। आप लोगों को शायद इनके शारीरिक पराक्रम की महिमा सुन कर विस्मय होगा। परन्तु याद रखिए इन दिनों में भी बृटिश सरकार को सबसे अधिक सहायता देनेवाले भारत के, सिक्ख, मरहटा, गोरखा, और राजपूत हैं। वे भारत के ही सिपाही हैं जिन्होंके कारण अनेक अवसरोंपर अँगरेज सरकार ने विजय पाई। राम आप लोगों से उस भारतवर्ष की बातें कह रहा है जो एक समय सब देशों का शिरोमणि और धनसम्पन्न था। अनेक जातियों के अभ्युदय का कारण भारतवर्ष ही है। कोलम्बस को अपने अभीष्ट भारतवर्ष के खोजने में ही अमेरिका का पता लगा था। अमेरिका का नाम उस समय भारतवर्ष रक्खा गया था। राम का यह मतलब नहीं कि भारतवर्ष अपने शारीरिक बल के कारण सारे संसार का मस्तक था। नहीं, उस समय भारत नीति में, चरित्र में, और अध्यात्म विद्या में भी सर्वोत्तम था। जो भूमि कभी संसार का मस्तक थी, आज वह पैर है। आज वह वीर देश सबका दास है। राम आपसे अपील करता है कि अरे मस्तिष्क, तुझे यदि बलवान रहना है तो पैरों की चिन्ता कर। यदि पैरों को चोट लगी तो मस्तिष्क को भी

हानि पहुँचेगी। अरे दिमाग! राम तुझसे अपने पैरों के नाम पर अपील करता है। वह माँ जिसने अपने दर्शन और साहित्य से, अपने उच्च विचार और धर्म से सारे जगत् का पालन किया है, आज बीमार है। आज आप की माता बीमार है। सबसे बड़ी शाखा आर्य्यन परिवार (Aryan faimily) की बड़ी बहन आज बीमारी से पीड़ित है। क्या आप उसकी सेवा न करोगे। अभी बीमार है पर मर नहीं गई है। आप उसकी सहायता कर सकते हैं। आप चिकित्सा कर सकते हैं। भारत संसार को दूध देता है, भोजन देता है, बलदायिनी औषधियाँ देता है। उस भारतवर्ष का गौ के समान पालन करो। यह गौ भूखी प्यासी तड़प रही है। मर रही है। वह आपको सस्ती घास के बदले मीठा दूध देगी, जिससे आपके शरीर और आत्मा बल पावेंगे। मेरे इस कहने पर युरोप के गौ और मांस को खानेवाले देश कहेंगे कि हम इस गौ को मारेंगे और खायँगे। अच्छा, आप की जो इच्छा हो करो, परन्तु एक बात याद रक्खो। यदि आप उसको मार कर खाना भी चाहते हैं, तो आप उसकी नीरोगता का ध्यान रखिये। रोगी गाय का मांस आपकी तन्दुरुस्ती का नाश कर देगा। अरे, इंगलैण्ड और यूरोप की महाशक्तिओ, तुम्हें इस पीड़ित गाय की रक्षा और चिन्ता करनी चाहिये।

अमेरिकन लोगो! कल्पना कर लो आज भारतवर्ष बुरा है। मान लिया कि भारत ने संसार को कुछ भी नहीं दिया। मान लिया, कि हिन्दू संसार में सबसे खराब हैं, बुरे हैं, तब भी उनका आप पर पूरा अधिकार है। यही उसका सहायता के लायक होने का सबसे अच्छा सबूत है। बीमार आदमी केवल अपनी ही हानि नहीं करता, किन्तु पास के स्थानों में भी अपनी बीमारी फैलाता है। एक मनुष्य जो ठण्ड से पीड़ित है वह संक्रामक रोग दूसरों में भी फैलाता है। हिन्दुस्तान इस समय सर्दी से पीड़ित है। आप कहेंगे गर्म देश सर्दी से कैसे पीड़ित हो सकता है। अरे, हिन्दुस्तान जाड़े की ठण्ड से नहीं पीड़ित है। उसको दरिद्रता की सर्दी सता रही है। अब आप सोचें कि यदि एक मनुष्य को शीत सता रहा है तो उसके पड़ोसी पर क्या असर पड़ेगा। एक आदमी जो हैज़ा का बीमार है दूसरों को भी बीमार बना देगा। इसलिये प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है कि बीमार पड़ोसी को अच्छा करे। राम इसलिये, सत्य के नाम पर, न्याय के नाम पर आपसे भारतवर्ष का पक्ष लेने के लिए प्रार्थना कर रहा है। आप पूछेंगे, भारत के साथ क्या बुराई हो रही है? भारतवर्ष, राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक बीमारियों से पीड़ित है।

भारत की राजनैतिक दशा।

राम आपसे अज्ञान से घेरे हुए भारत की राजनैतिक अवस्था की बाबत कुछ न कहेगा। जिस देश में असंख्य आदमी दुर्भिक्ष से मर रहे हों, जहाँ छोटे-छोटे बच्चे भूख के कारण मृत्यु के मुँह में जा रहे हों, जहाँ होनहार नवयुवक प्लेग और दरिद्रता के शिकार हो रहे हों, जहाँ नन्हें-नन्हें सुकोमल बच्चे सूखे और उदास मुख से रो रहे हों क्योंकि भूखी माताओं के स्तनों से उनके पोषण के लिए दूध नहीं उतरता, जिस देश में मनुष्य को कठिनाई से दो समय भोजन मिल सकता हो, जहाँ मनुष्य साधारण स्थिति में रहने पर भी बड़े आदमियों की कोटि में समझा जाने लगता हो, जहाँ राजा और रईस भी शोचनीय आर्थिक दशा में रहते हों, जिस देश में सहनशील राजभक्त और कृतज्ञों की संख्या इतनी बढ़ गई हो, वहाँ ऐसी यन्त्रणाएँ और कष्ट होना अचरज नहीं..........बड़े-बड़े पदों पर अँगरेज़ हैं। तीस करोड़ भारतीयों में से पार्लियामेण्ट का मेम्बर भी एक भी नहीं। भारत के शान्तचित्त मनुष्यों का चरित्र सड़ी शराब से ख़राब किया जाता है, वहाँ इसका खूब प्रचार हो रहा है। भारतीयों के हिस्से में यही स्वतन्त्रता आई है। अंगरेजों के समय में इन

शराबों का वहाँ प्रचार हुआ। बस, समझ लें, वहाँ की राजनैतिक स्थिति कैसी है। यह भारतीयों की बाहरी दशा है।

अब राम आपको वहाँ की भीतरी बुराइयाँ बतलाना चाहता है जिनके कारण भारतवासी दुःख उठा रहे हैं। अब आप भारतीयों के अधःपात का असली कारण सुनेंगे। अब आप उनकी निराशाओं और कठिनताओं का मूल कारण सुनेंगे।

भारत के पतन का कारण वेदान्त-दर्शन में समझाया है। वह कर्म है। कर्म का अक्षरशः अर्थ काम है अर्थात् जो कुछ हम करते हैं। यही कारण है कि हिन्दुओं ने जो पहले कर्म किये थे उनका फल वे अब भोग रहे हैं। जैसा भारतीयों ने प्राचीन निवासियों के साथ व्यवहार किया था वैसा ही व्यवहार उनके शासक उनके साथ कर रहे हैं। (यह कर्मों का फल है)।

हर एक रोगी मनुष्य अपने रोग का उत्तरदायी स्वयं है। वह अपने अज्ञान से स्वास्थ्य के नियमों को भंग करके किसी रोग में फँसता है। परन्तु अब इस बात पर विशेष विचार की आवश्यकता नहीं कि बीमारी क्यों आई। डाक्टर रोगी को धमकाने, या फटकारने

नहीं जाता है बल्कि उसे प्रसन्न करने जाता है। इस लिए यह समय भारतवासियों के दोष देखने का नहीं है। आपका कर्तव्य इस समय उनकी विपत्ति में सहायक बनना है।

वर्ण-व्यवस्था

सम्पत्ति-शास्त्र से हमको श्रम-विभाग के सिद्धान्तों का ज्ञान होता है। फैक्टरी अथवा मिल में जहाँ कारबार की तरक्की करनी हो, वहाँ कार्य का विभाग करना पड़ता है। इस मनुष्य देह में भी श्रम-विभाग है। आँखें केवल देखती हैं सुन नहीं सकतीं, कान केवल सुन सकते हैं देख नहीं सकते। हाथ पैरों का काम नहीं कर सकते। हाथों को अपना काम और पैरों को अपना काम करना होगा। यदि हम आँखों से सुनना चाहते हैं और नाक के बल चलना चाहते हैं और कानों से खाना चाहते हैं, तो इसका फल क्या होगा? इससे हम शरीर-संगठन की पहली अवस्था में पहुँच गए। हम यह नहीं चाहते कि आँख, नाक, कान आदि सब इन्द्रियों का काम अकेला पेट ही करा करे। इसलिये काम के विभाग की आवश्यकता है। इसी विचार से किसी समय भारत में वर्ण-व्यवस्था रक्खी गई थी। वर्ण-व्यवस्था श्रम-विभाग के सिवाय और कुछ नहीं है। एक आदमी ने जनता में ज्ञान

के प्रचार का काम स्वीकार किया। दूसरे ने संग्राम के काम का भार अपने ऊपर लिया, क्योंकि उसकी योग्यता और रुचि युद्ध में अधिक थी। कुछ ऐसे थे जो केवल अचल जीविका अर्थात् व्यापार के योग्य थे। कुछ ऐसे थे जो न धर्म और ज्ञान का प्रचार कर सकते थे, न लड़ाई के काम के थे और न व्यापार ही में होशियार थे। ऐसे मनुष्य वहां के पुराने जङ्गली थे जो शिक्षा दीक्षा से हीन थे। यह लोग साधारण श्रम अर्थात् मेहतर वगैरह का काम करने को तैयार हो गए। बस भारत में इस प्रकार चार हिस्सों में काम बँट गया। धर्म प्रचारक ब्राह्मण कहलाने लगे, योद्धा लोग क्षत्रिय कहे जाने लगे व्यापारी वैश्य कहलाने लगे और यह जंगली श्रमजीवी शूद्र के नाम से पुकारे जाने लगे।

क्या यहाँ (अमेरिका में) श्रम-विभाग नहीं है? क्या इंगलैण्ड में श्रेणियाँ नहीं हैं? क्या अमेरिका में जाति नहीं है? क्या यहाँ अपर टेन (Upper ten) और प्लीबियन (Plebians) जातियाँ नहीं हैं ? सर्वत्र जाति विभाग स्वाभाविक है। तब फिर भारत के जाति-विभाग में क्या दोष है? सुनिये ! किसी समय भारत में हिन्दू नियमों पर एक पुस्तक लिखी गई थी। इसका नाम मनुस्मृति रक्खा गया था। प्रत्येक श्रेणी के मनुष्यों

के दैनिक व्यवहार के नियम और उपाय इस पुस्तक में हैं। इस पुस्तक में ब्राह्मणों को क्या करना चाहिए, इस का विवेचन किया है। क्षत्रियों का क्या (धर्म) काम है यह दिखलाया है। उस समय के सभी श्रेणियों के मनुष्यों का मतलब पूरा करने के लिए यह पुस्तक लिखी गई थी। पर अब समय २ पर इस पुस्तक का मतलब ठीक नहीं लगाया जाता। इसकी बहुत सी बातें उलट-पुलट हो गई हैं। श्रेणी-विभाग और श्रम-विभाग की परिपाटी को बिगाड़ दिया है। भ्रष्ट कर दिया है। इसी कारण इस पुस्तक से अब भले की जगह बुरा हो जाता है।

‘भारतीय जाति का अधःपात’ का वर्णन करते हुए स्वामीजी महाराज ने कहा था:—

श्रम-विभाग के अनुसार जो चारों वर्णों में जाति का विभाग हुआ था, उसका उद्देश्य बहुत ऊँचा था, खराब न था। परन्तु वर्तमान प्रणाली इतनी भ्रमपूर्ण हो गई कि उससे भारत की बड़ी हानि हो रही है। इस सारी अवनति का मुख्य कारण नीची जातियों के प्रति अच्छा व्यवहार न होना है।

स्वामीजी ने आगे कहा था:—

मनु के समय से दुनियाँ कई बार बदल चुकी। नदियों

का रुख बदल गया, बड़े २ जङ्गल छिन्न-भिन्न हो गए। पेड़ पत्ते जीव-जन्तु सब बदल गये। क्षत्रियों के कर्तव्य अर्थात् लड़ाई का तो भारत में अब नाम निशान भी नहीं रह गया। देश की भाषा (संस्कृत) वहाँ बिल्कुल मिट गई। आज कल के हिन्दुओं के लिये संस्कृत वैसे ही अपरिचित भाषा है जैसे ग्रीक और लैटिन भाषाएँ।

इतने पर भी हिन्दू लोग मनु के बहुत पुराने नियमों की तरफ़ दौड़ते हैं। स्वतन्त्रता-पूर्वक कभी किसी बात का विचार करना वहाँ पाप समझा जाता है, जो कुछ इस भाषा (संस्कृत) में लिखा होता है उसे ही पवित्र और पालनीय समझते हैं। यदि आपकी युक्तियाँ पुराने विचारों पर अपना रंग नहीं जमा सकतीं तो आप धर्म-भ्रष्ट हैं। कुछ धर्म-सम्बन्ध में नया विचार कीजिये तो सब आपके विरोधी हो जाएँगे।

अछूत जातियों से दुर्व्यवहार के सम्बन्ध में बोलते हुए स्वामीजी ने कहा थाः—

जीवन की स्थिति वंश-परम्परा गुण-संयोजना और शिक्षा पर निर्भर है। मनुष्य की शारीरिक शक्तियाँ भी वंश-परम्परा के सिद्धान्तों पर निर्भर रहती हैं। किन्तु मनुष्य शिक्षा के द्वारा अपनी उन्नति कर सकता है। पक्षियों के बच्चे जब अंडों से निकलते हैं तो उनमें माता-पिता के समान

ही कार्य करने का ढङ्ग आ जाता है। वे माता पिता से पैतृक बातें ही सीखते हैं। बस उनकी उन्नति समाप्त है। माँ बाप से विशेष वे कुछ नहीं जान सकते, पर दूसरी ओर देखिए तो मनुष्य अपने उद्योग से मां बाप से विशेषज्ञ और उन्नत हो सकता है। बस, यही मनुष्य और पशु पक्षियों में भेद है।

हिन्दुओं ने यह भारी भूल की कि उन्होंने शिक्षा तथा ग्राह्य शक्ति का परित्याग करके हिन्दू समाज पर वंश-परम्परा के नियमों का इतना बोझ लाद दिया, कि मनुष्य पक्षी पेड़ पत्ते सब बराबर हो गए। वे व्यावहारिक रूप से आत्मा की असीम सम्भावनाओं में विश्वास नहीं करते। उनका यह विश्वास नहीं है कि शूद्र ब्राह्मणता को पा सकता है। वे शूद्र को शूद्र ही रखना चाहते हैं।

स्वामीजी ने आगे चल कर कहा—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य कोई भी दस्तकारी के काम को करने के लिए तैय्यार नहीं होते। वे इसे शूद्रों का काम समझते हैं। ऊँची श्रेणी के मनुष्य को भूखे मरना स्वीकार है परन्तु वे दस्तकारी आदि को न छूएँगे। जैसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों में से कोई भी चमार, नाई, मल्लाह, दर्जी, रंगसाज आदि का काम करने को तैयार न होगा। वे चमड़े का व्यापार कभी नहीं करेंगे। ऐसी दशा में

भारत में शिल्प या वाणिज्य की उन्नति कैसे हो सकती है। हिन्दू लोग कैसे उपयोगी कला कौशल में बढ़ सकते हैं? अमेरिका आज अपने शिल्प वाणिज्य के कारण ही धनाढ्य है। यूरोपियन शक्तियाँ अपने शिल्प वाणिज्य के कारण ही सम्पन्न हैं। जो रुपयेवाले देश हैं, उनके हाथ में वाणिज्य व्यापार है। उस देश में उन्नति की क्या आशा करें, जिसमें तीन-चौथाई आदमी औद्योगिक धन्धों से दूर भागते हैं"।

इसके पश्चात् स्वामीजी महाराज ने अमेरिका के निवासियों से भारत की सामाजिक स्थिति सुधारने का अनुरोध किया। उन्होंने अमेरिकावालों से हिन्दुस्तानियों को ऐसी सहायता देने की अपील की कि जिससे भारतीय लोग, अपने पूर्वजों के आश्रित न रह कर उन्हें अपना आश्रय दें। इस स्थल पर स्वामीजी ने भारत में हिन्दुस्तानी स्त्रियों की दशा के विषय में कहा था:—

"भारतवर्ष में स्त्रियों की संख्या संयुक्त राज्य (United States) से दुगुनी है, परन्तु उनमें से १ प्रति सैंकड़ा भी अपना नाम लिखना नहीं जानती। इसी स्थल पर स्वामीजी ने धर्म और गो-रक्षा के विषय में अपने विचार प्रकट किए थे। उन्होंने कहा था—सुनते हैं मुसल्मानों के प्रथम विजेता ने हिन्दुओं के इस वहम का फ़ायदा उठाया था।

जब मुहम्मद ग़ोरी ने पहली बार भारत पर चढ़ाई की तब वीर राजपूतों ने उसको परास्त किया। किन्तु वह निराश होकर बैठा नहीं और फिर हिन्दुस्तान में आक्रमण करने के लिए आया। इस बार उसने हिन्दुओं के झूठे वहम और विश्वासों को भली-भाँति जान लिया। इसलिये उसने अपनी सेना के चारों ओर गायों की कतार खड़ी कर दी। बस, यह गायों की कतार उसका एक दुर्गम दुर्ग बन गई। दया के भावों से भरे हुए हिन्दू-लोग गायों को देखकर कम्पित हो उठे। अस्त्र-शस्त्र का प्रयोग भूल गये। इसके परिणाम में, यद्यपि उन्होंने कुछ गायों को बचाया परन्तु देश को सदा के लिए गो-भक्षियों के हाथ में सौंप दिया। चाहे यह बात, यथार्थ न हो परन्तु वर्तमान वहमों को देखते हुए, अवश्य विश्वास हो जाता है कि इसमें कुछ सच्चाई है।

भारत के पुराने ढंग के 'वैयाकरण-केसरी' पण्डितों की भी यहाँ स्वामीजी ने अद्भुत समालोचना की। उन्होंने भारत के अभ्युदय के उपायों की व्याख्या करते हुए कहा था कि वहाँ धर्म की मात्रा आवश्यकता से अधिक बढ़ी हुई है। इसलिये वहाँ वेदान्त के

व्यावहारिक ज्ञान के प्रचार की आवश्यकता है। कोई अपराधी मनुष्य केवल जेलखाने भेज देने से नहीं सुधर सकता, जब तक कि उसे अपने अपराध का पूरा ज्ञान न हो। एक ज्ञान शून्य बच्चा आंच को छूकर अपने हाथ को जला लेता है। इसका कारण उसको आंच की प्रकृति का ज्ञान न होना ही है। यदि उसको समझा दिया जाय कि इसको छूने से हाथ जल जाता है, तो वह कभी ऐसा न करेगा। बस इसी तरह से आध्यात्मिक ज्ञान का वहाँ की जनता में प्रचार करो।

इसी व्याख्यान में उन्होंने एक स्थान पर कहा था—भारत भूमि में यही एक विशेष बात है कि वहाँ धर्म के बिना सामाजिक या राजनैतिक सुधार नहीं हो सकता। इण्डियन नेशनल कांग्रेस या और कोई राजनैतिक या सामाजिक-सुधार करनेवाली संस्था भारतीय लोगों के हृदय में स्थान नहीं पा सकती, क्यों कि ये विचार उनको धर्म के द्वारा नहीं मिलते। यही कारण है कि भारत में व्यावहारिक वेदान्त के सिवाय और किसी प्रकार से सुधार का प्रभाव नहीं हो सकता।

यहीं उन्होंने यह भी कहा था—भारत में अमेरिकन मिशनरी पादरी लोगों के भेजने से वास्तव में कोई लाभ नहीं। वह वहाँ पर ३००–३०० रुपया वेतन लेते हैं। वे वहाँ

बड़े ठाठ से नवाबों की भाँति रहते हैं। हिन्दू परिवारों में परस्पर विरोध भाव पैदा करा देते हैं। जो हिन्दू ईसाई हो जाता है अपने पहले साथियों का दुश्मन बन जाता है। हिन्दू-स्त्रियाँ अपने पतियों से अलग हो जाती हैं। बच्चे अपने मां बापों से अलग कर दिए जाते हैं।

आगे चल कर उन्होंने कहा थाः—भारत के किसी भी विश्व-विद्यालय में अंगरेजी के सिवाय और कोई भी जीवित भाषा नहीं सिखाई जाती है। यह भी उनसे सेवा लेनी होती है। इसलिए पढ़ाई जाती है। क्योंकि बिना इसके अंगरेजों का वहां के लोगों से परस्पर व्यवहार नहीं हो सकता। गणित भारत में इतनी पढ़ाई जाती है कि अमेरिका के किसी विद्यालय में न पढ़ाई जाती होगी। चित्रकारी, शिल्पकारी और मिकेनिकल इञ्जीनियरिंग की शिक्षा का अभाव है। कपड़े बुनने का काम किसी विश्वविद्यालय में नहीं सिखाया जाता। शस्त्र विद्या की वहां चर्चा नहीं। भारतीय लोगों को अपने घरों में हथियार वर्जित हैं। अगर कोई मनुष्य अपने पास बड़ा चाकू भी रक्खे तो कारागार भेज दिया जाता है।

इसके पश्चात् स्वामी जी ने कहाः—राम नहीं चाहता कि पादरियों के ढंग के आदमी भारत में भेजे जावें। जो शानदार कोठियों में रहते हैं, गाड़ियों पर

चलते हैं, वे भारत को नहीं उठा सकते। वहां वह लोग जाँय जो सच्चाई के लिए शहीद हों। असली काम करने वाले हों और जो 'परिया' लोगों (मदरास की एक अछूत जाति) के साथ फर्श पर बैठ सकते हों, उनके से फटे कपड़े पहन सकते हों, उनकी अधजली कच्ची रोटी खाने को तैयार हों, और जो इन्द्रियों के सुख और सब प्रकार के आराम पर लात मारने वाले हों, निष्काम कर्म करने वाले हों।

प्रसङ्गवश इस अपील में उन्होंने यह भी कहा थाः—भारत में कोई हिन्दुस्तानी अंग्रेज या अमेरिकन लोगों से मिलने का साहस नहीं करता। वहाँ के लोग गोरे आदमियों से बहुत डरते हैं। उनके सामने वह बड़े अदब से २०-२५ कदम के फासले पर खड़े होते हैं। पतलून और टोप देख कर घबरा जाते हैं। यदि किसी रेलगाड़ी में अंगरेज बैठा हो, तो हिन्दुस्तानी उस डिब्बे में नहीं बैठ सकता। राम ने कई स्टेशनों पर देखा है कि युरोपियन ने हिन्दुस्तानी को ठोकर मार कर गाड़ी से निकाल दिया है। बस, इन्हीं विदेशियों द्वारा भारतीयों में दुर्बलता आ गई······।

अन्त में उन्होंने कहा थाः—हिन्दुस्तान की वर्तमान राजनैतिक और सामाजिक स्थिति उसमें स्वतन्त्रता के

भाव पैदा नहीं होने देगी। फिर शिक्षा क्या है? शिक्षा का मुख्य उद्देश्य स्वतन्त्रता ही है। जिस शिक्षा से मुझे स्वतन्त्रता अथवा मोक्ष का लाभ नहीं होता उस शिक्षा से मैं घृणा करता हूँ। उस शिक्षा से कोई लाभ नहीं जो बन्धन में ही रखती है। इसलिये सच्ची शिक्षा और स्वतन्त्रता से हिन्दुओं की परिस्थिति को बदलना चाहिए। परिस्थिति बदलने का उपाय एक मात्र यही है कि वहाँ जाओ और उन्हें शिक्षित बनाओ।

स्वामीजी ने यह भी कहा था कि भारतीय विद्यार्थियों को अमेरिका बुला कर उन्हें विविध विषयों की शिक्षा देनी चाहिए। यदि वे शिक्षित हो कर भारत को लौटेंगे तो वहाँ की नीच जाति को शिक्षित बनावेंगे।

स्वामीजी की यह वक्तृता बहुत ही प्रभावशाली और और लम्बी है। हमने आप के सामने केवल संक्षिप्त सार रक्खा है। पाठक इसके पढ़ने से जान सकेंगे कि स्वामीजी भारतवर्ष के कैसे शुभचिन्तक महात्मा थे। यदि ऐसे महात्मा कुछ समय भी भारतभूमि को पवित्र करते रहते तो यह देश अवश्य आज उन्नति के शिखर पर होता। परन्तु, भाग्य की बात है कि ऐसे महात्मा प्रथम तो यहाँ होते ही नहीं हैं और यदि कोई स्वामीजी महाराज जैसे होते भी हैं तो अपनी कृपा की थोड़ी-सी झलक दिखाते

ही ईश्वर के यहाँ बुला लिए जाते हैं। अस्तु, हिम्मत नहीं हारनी चाहिए, कभी तो वह दयालु दया करेगा, कभी तो भारत शिक्षित और स्वतन्त्र होगा। हम तो यही ठीक समझते हैं:—

राम राम रटते रहो जब लौं घट में प्रान,
कबहुँ तो दीनानाथ के भनक पड़ेगा कान।

उद्योग करते रहिए कभी न कभी फल अवश्य मिलेगा।

प्रत्यागमन

हमें चाणक्य का बचन स्मरण आता है कि विद्वान और राजा समान नहीं है। राजा की पूजा केवल अपने देश में ही होती है, विद्वान् की पूजा और आदर सब देशों में होता है। हमारे स्वामीजी महाराज जापान और अमेरिका आदि में लगभग तीन वर्ष तक उपदेश देते रहे। वहाँ के लोग इनको प्राणों से भी अधिक समझने लगे। अन्त में स्वामीजी ने 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' अर्थात्, जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी विशेष है, इस सिद्धान्त के अनुसार अपने प्रिय देश भारत को याद किया और सन् १९०५ में पुनः अपनी जन्म-स्थली को पवित्र किया। भारत में आकर उन्होंने व्याख्यानों की धूम मचा दी। स्वामीजी की हार्दिक इच्छा थी कि भारतवर्ष भी और देशों की भाँति उन्नत हो। इसी

उद्देश्य से स्वामीजी ने कुछ समय तक यहाँ प्रचार भी किया। परन्तु देश का भाग्य अच्छा न होने से वे बहुत थोड़े समय ही यहाँ के लोगों को उपदेशामृत पान करा सके और पूरी तरह से अपने विचारों में सफल होने से पहले ही इस पाञ्चभौतिक शरीर से अलग हो गये और देश को सदा के लिए शोक-मग्न बना गये।

महा प्रस्थान

हाय! दिवाली तेरे लिये हम कब तक दीये जला-जला कर कृत्रिम रोशनी से तेरा स्वागत करेंगे। तूने भारत को सदा के लिए अन्धकार में डाल दिया। हमारे ऋषियों और तपस्वियों को खानेवाली राक्षसी! वास्तव में तू अन्धकार-मयी है, राक्षसी है। लक्ष्मीदेवी अब तुझ से घृणा करेगी। हिन्दुओ! लक्ष्मीपूजा के लिये और कोई दिन निश्चय करो। यह कार्तिक की काली अमावस्या अशुभ है। इसने हिन्दू धर्म के संरक्षक महर्षि दयानन्दजी को अपने मुँह में रख लिया और हमारे श्रद्धेय स्वामीजी महाराज रामतीर्थजी को भी संवत् १९६३ अर्थात् सन् १९०६ के अक्टूबर मास की १७ तारीख़ को अपना शिकार बना लिया। बस, हमारी तुझमें में अश्रद्धा हो गई है। ख़ैर, अब भी अपने चरित्र को आगे के लिये सँभाल नहीं तो किसी दिन कोरी अँधेरी रात रह जायगी।

अब अपने पाठकों के सामने हम स्वामीजी का अन्तिम लेख रखते हैं। यह लेख उन्होंने मरने से थोड़ी देर पहले लिखा था। उन्होंने उसी समय अपने और भी अधूरे लेखों को पूरा किया था स्वामीजी के इस अन्तिम लेख का आशय यह है:—

"ऐ मौत! बेशक ले ले, तू मेरे इस शरीर को, मुझे इसकी पर्वाह नहीं। व्यवहार के लिए मेरे पास कुछ कम शरीर नहीं हैं। केवल चन्द्रमा की किरणों की चाँदी के पवित्र तार पहन कर जीवन व्यतीत कर सकता हूँ। पहाड़ी नदी नालों के वेष में गीत गाता फिरूँगा। समुद्र की लहरों में नाचता रहूँगा। मैं शीतल सुगन्धित पवन हूँ, मेरी यह सूरत हमेशा बदलती रहती है, इस रूप में मैं पहाड़ों से उतरा। मुरझाए हुए पौदों को ताज़ा किया गुलों को हँसाया। बुलबुलों को रुलाया। दरवाजों को खटखटाया। सोतों को जगाया। किसी का आँसू पोंछा। किसी क घूँघट उठाया। इसको छेड़ उसको छेड़, तुझ को छेड़ यह आया वह गया, न कुछ साथ रक्खा न किसी के हाथ लगाया।"

इस लेख को लिख कर राम दो पहर के समय गंगाजी गए और वहाँ जल समाधि ले गए। समाधि के सातवें दिन राम का शरीर पद्मासन मारे हुए 'ओउम्' के उच्चारण

के सामान मुँह खोले हुए एक गुफा में मिला। राम के शिष्यों ने उनके शरीर को एक सन्दूक में बन्द करके माता गंगाजी को समर्पण कर दिया। राम का शरीर गंगामाता के प्रवाहों में लीन होगया, पर उनके पवित्र यश की सुगन्धि सारे संसार में सदा के लिए स्थायी रहेगा।

शोक और उपसंहार

राम के देहावसान के दुःसंवाद ने सारे संसार को शोक-सागर में डुबो दिया। टेहरी नरेश ने यह सुनते ही राज-दरबार बन्द कर दिये। लाहोर में यह समाचार १९वीं अक्टूबर को पहुँचा था। लाहोर के फोरमैन क्रिश्चियन कालेज में शोक प्रकाश करने के लिए एक बड़ी सभा हुई। उस सभा में छः सात हजार आदमी उपस्थित थे। कालेज भवन में तिल भर जगह न थी। श्रोताओं की आँखों से आँसुओं की धारायें चल रही थीं। स्वामीजी की असामयिक मृत्यु (३३ वर्ष की अवस्था में) से भारत ही नहीं बल्कि सारा सभ्य संसार दुःखित हुआ।

अस्तु, प्रिय पाठको! स्वामीजी गए। परन्तु उनके उपदेशों से आज भी लाभ उठा सकते हैं। उन्हें पढ़िए मनन कीजिए और तदनुसार अध्यात्म-विद्या का उपयोग कीजिए। वे आपके लिए यह अनन्त सम्पत्ति छोड़ गए हैं।

❀ इति ❀